आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ-माला का प्रथम पुष्प (द्वितीय संस्करण)

आसव-विज्ञान



लेखक—

हरिशरणानन्द

मुद्रक—ना० रा० सोमण,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

आसव-विज्ञान पर कुछ पत्रोंकी सम्मतियाँ

माधुरी लखनऊ वैसाख संख्या ४, १९२६ में

आयुर्वेदाचार्य पं० शालिग्राम शास्त्री द्वारा समालोचित पुस्तकका विषय उसके नामसे ही स्पष्ट है। आसव अरिष्ट सुरा आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली पाश्चात्य साइन्स द्वारा निर्द्धारित अनेक ज्ञातव्य बातोंका इसमें समावेश है।

लेखकने आसव और सुराको एक ही माना है। जो वैद्य आसवादि बनाते हैं उन्हें इस पुस्तकसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है जो नहीं बनाते उनको भी अनेक अंशोंमें ज्ञान वृद्धि हो सकती है। पुस्तक अपनी ढंग की अच्छी है।

वैद्य मुरादाबाद संख्या १, १९२६

समालोचक पं० घनानन्दजी पन्त

इसमें प्राचीन और नवीन वैज्ञानिक विधिसे आसव और अरिष्ट बनानेकी विधि तथा आसव सम्बन्धी अन्य अनेक बातें बड़ी अच्छी रीतिसे सरल भाषामें समझाई गई हैं। स्वामीजीने बहुत दिनों तक बड़ी खोज करनेके बाद जो विज्ञानवादके आधार पर आसव बनानेकी उत्तम विधि खोज निकाली है, उक्त विधिके द्वारा बनाये हुए आसवोंके बिगड़ने का भय नहीं रहता, पुस्तक बड़ी अच्छी है। वैद्योंको इसे मँगाकर अवश्य पढ़ना चाहिये।

आरोग्यदर्पण जुलाई १२, अङ्क १९२६

समालोचक गोपीनाथ गुप्त

इसमें आसव-निर्म्माणकी प्राचीन और अर्वाचीन विधियाँ, आसव और सुराका भेद, आसव खींचना, आसव-विकृति, आसव-रक्षा प्रत्येक मौसिम आसव-निर्माणमें उपयोगी ज्ञान, आसवमें शर्कराका परिणामादि

अनेक बातोंका वैज्ञानिक वर्णन है। दशमूलासव चन्दनासवादि कतिपय आसवोंकी नवीन और प्राचीन निर्म्माण विधि उदाहरण स्वरूप भी लिखी गई है। वस्तुतः पुस्तक वैद्यों और आयुर्वेदीय फार्मेसियोंके सञ्चालकोंके लिए अत्युपयोगी है। हिन्दीमें अपने विषयकी यह पहिली ही पुस्तक है और आदर पानेके योग्य है। ऐसी उपयोगी पुस्तकके लिये लेखक और प्रकाशक को बधाई है।

स्वास्थ्यबन्धु अलीगढ़ श्रावण संख्या ३, १९८३

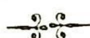
इसमें आसव अरिष्ट या सुरा बनानेकी विधि आयुर्वेदानुसार अत्यन्त विस्तारसे लिखी है। पाश्चात्य तहकीकातोंका भाव लेकर भी उपयोगी बातोंको भली तरह समझाया है ताकि बढ़ियासे बढ़िया आसव तय्यार कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि यह पुस्तक अपने विषयकी पहिली है। ऐसी पुस्तकोंको वैद्य समुदायको अवश्य संग्रह करना चाहिये ताकि प्रकाशकोंका उत्साह बढ़े और वे आगे चलें।

धन्वन्तरि अङ्क ८–९ ज्येष्ठ आषाढ़, १९८६

इस पुस्तकमें आसवको सुरा प्रमाणित करनेमें विशेष प्रयत्न किया गया है, तथा सुरा यन्त्रका प्राचीन और अर्वाचीन मतसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आसवकी प्राचीनता, उपयोगिता और उसके बनानेकी विस्तारपूर्वक विधि दी गई है। जो अबतक हिन्दी भाषामें प्रकाशित नहीं हुई। पुस्तक वैद्योंके देखने योग्य है।



प्राक्कथन



आयुर्वेदमें आसवारिष्ट निर्म्माण बहुत संक्षेपमें लिखा मिलता है जिसके आधारपर आसवारिष्ट निर्म्माण करते समय प्रायः देखा जाता है कि कभी तो आसव उत्तम बन जाते हैं, कभी खराब हो जाते हैं। एक आसव उत्तम बना तो क्यों बना? दूसरा कैसे बिगड़ गया? क्यों बिगड़ गया? इसका समाधान किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता; न कोई अनुभवी वैद्य ही इसका निराकरण करते हैं।

आसवारिष्टका व्यवहार अन्य क्वाथ, चूर्ण, गुटिका आदि की अपेक्षा कम नहीं। कोई भी ऐसा वैद्य नहीं जो आसवारिष्ट का उपयोग न करता हो, किन्तु इस त्रुटिको कोई दूर न कर सका, यह आयुर्वेदकी मुख्य औषध-निर्म्माण-प्रक्रिया आज हजारों वर्षसे अन्धकारमें पड़ी चली आती देखकर अत्यन्त दुःख था।

यहाँपर स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ, कि इस सम्बन्धमें मैंने केवल स्वयम् ही आसवारिष्ट निर्माणकर उनके बनने बिगड़नेकी स्थितिको जाननेका ही प्रयत्न नहीं किया; प्रत्युत

मैं कई बड़ी–बड़ी बीयर व शराब बनानेवाली फैक्टरियोंमें जा जाकर इस बातका अनुभव लेता रहा कि उनके मद्य-सम्बन्धी सन्धान कार्य कैसे होते हैं। यही नहीं, आसवारिष्ट निर्माण-कालमें औषध, मीठा, द्रव्य तथा जल आदिका मिश्रण करनेपर जो सन्धान कार्य होते हैं, वह क्यों होते हैं? किन कारणोंसे होते हैं? और सन्धानकालमें जो–जो उसमें परिवर्तन होता है उसके किस भागमें होता है? कैसे होता है? इत्यादि सूक्ष्म बातोंका मैंने रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे भी अच्छी तरह अध्य-यन किया।

जब मुझे आसवारिष्ट निर्माण-सम्बन्धी सारी बातोंका अनुभव हुआ, तो ई० १९२६ ई० में वैद्योंके लाभार्थ उस प्रक्रियाको आसव-विज्ञान नामकी पुस्तकके रूपमें वैद्योंके समक्ष उपस्थित किया।

उस पुस्तकके प्रकाशित होनेपर वैद्योंमें एक बार हलचल मच गई। अधिक वैद्योंने पुस्तकको पढ़कर प्रसन्नता प्रकट की और अनुकूल सम्मति भेजी, कुछ वैद्योंने पुस्तकमें दिए विचारके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया। जिसका समाधान आयुर्वेद-विज्ञान व विज्ञान द्वारा समय-समयपर मेरी ओरसे होता रहा।

दूसरा संस्करण

जब कि आसव-विज्ञानका प्रथम संस्करण समाप्त होगया तो पुस्तक रूपमें उन्हीं बातोंका समाधान करनेका अवसर आगया। इस संस्करणमें उन समस्त आक्षेपोंका उत्तर दिया गया है, जो समय-समयपर वैद्योंके द्वारा किए गए थे।

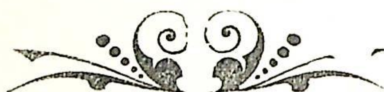
अन्य विशेषताएँ

प्रथम संस्करणमें केवल आसवारिष्ट निर्म्माण-सम्बन्धी अनुभूत प्रक्रियाके और अधिक चर्चा न थी। इस संस्करणमें समस्त आसवारिष्टोंका आकारादिनुक्रमणिकासे संग्रह कर दिया गया है। और इससे भिन्न प्रत्येक आसवारिष्टकी सेवनविधि व उनके गुण, धर्मोंका भी अच्छी तरह विवेचन किया गया है। आकार प्रकारमें यह दूसरा संस्करण पहिलेकी अपेक्षा तिगुना बड़ा होगया है। तथा अनेक नई नई वैज्ञानिक बातोंका समावेश किया गया है जो पहिले न थीं, इससे भिन्न प्राचीन मानपरिभाषाको न रखकर इस समयका प्रचलित मान (तोल) इसलिए देदिया है ताकि वैद्योंको औषध व अन्य द्रव्योंकी मात्रा समझनेमें सुविधा हो। हमने मान मात्रा चरकीयको

आधार मानकर उससे ही आधुनिक मानका प्रायः संतुलन किया है ५ तोलासे नीचेके प्रचलित मानको मुख्य माना है। आशा है यह संस्करण वैद्योंके लिए सर्वाङ्ग पूर्ण सिद्ध होगा।

आयुर्वेदका हितेच्छु—

हरिशरणानन्द

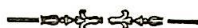


विषयसूची

पूर्वार्द्ध



आसव-विज्ञान



आसवारिष्ट क्या वस्तु है ?

आयुर्वेदमें औषधियां कई रूपमें लाकर उपयोजित होती हैं। यथा-कल्क, क्वाथ, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, आसव, तेल, घृत आदि। कल्क में औषध पानी में पिसी हुई चटनी जैसी बनाकर दी जाती है। क्वाथ में औषधियोंको उबालकर चतुर्थांश रहने पर उसका उपयोग होता है। चूर्णमें औषधियोंको कूटकर चूर्ण बनाकर देते हैं। गुटिका या गोली में औषध चूर्णको पानी या किसी अन्य द्रव्यके रससे घोंटकर गोली बनाकर काममें लाते हैं। अवलेहमें औषधको कूट क्वाथ बना उसे गाढ़ा कर मिश्री आदि मिष्ठ द्रव्य मिला चाटनेके योग्य बना लेते हैं और उसे गाढ़ी या पतली चटनीके रूपमें औषधका उपयोग करते हैं। ठीक इसी तरह औषधियोंको पकाकर या इसी तरह भिगों या रस निचोड़कर उस द्रव या क्वाथमें गुड़, शहद, शक्कर, किण्व आदि डालकर कुछ दिनके लिये सुरक्षित रख देते हैं। इस सुरक्षित दशा में पड़े-पड़े उस द्रवमें सन्धान होता है और सन्धान से उस द्रव्यमें परिवर्तन आकर द्रव रूप औषधका जो रूप स्थिर होता है उसका तथ्य आसव या अरिष्ट है। उक्त पङ्क्तियोंका लक्षण भी शास्त्रने ऐसा ही किया है। यथा—

द्रवेषु चिर कालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत्।
आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ शार्ङ्गधर ।

अर्थात्—पानीमें औषधियोंको क्वाथ करके या विना क्वाथ किये डालकर मीठा मिलाय चिरकालके लिये रखकर जो सन्धान करते अर्थात् लाहन उठाते हैं उसे वैद्य आसव अरिष्ट नाम भेदसे पुकारते हैं। यहांपर-"आसवारिष्टभेदैस्तु" शास्त्रकारके इस पादका अभिप्राय यह नहीं दिया कि इसके आसव, अरिष्ट दोही भेद हैं। नहीं; आसवके छः भेद शास्त्रने किये हैं। यथा—१ आसव २ अरिष्ट, ३ सीधु, ४ वारुणी, ५ सुरा और ६ मैरेय। यह आसव भेदसे छः प्रकारकी क्या वस्तुएँ हैं? उनके लक्षण और रूप क्या हैं? हम प्रथम इसका शास्त्रीय वर्णन देकर आगे बढ़ेंगे।

१—आसव-यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। शार्ङ्गधर।

जो अपक्व औषधमें जल और मीठा मिलाकर सन्धान किया जाय उस सिद्ध किये हुये मद्य की आसव संज्ञा है। इस श्लोकमें वैद्योंका "मद्य" शब्दकी ओर ध्यान इसलिये करा रहा हूँ कि आगे इस शब्दकी व्याख्याकी आवश्यकता होगी।

२—अरिष्ट-अरिष्टः क्वाथ सिद्धः स्यात् सम्पक्वो मधुरद्रवैः। शार्ङ्गधर।

औषधको जलमें पकाकर पुनः उस क्वाथ द्रव्यमें मीठा छोड़कर सन्धान किया जाय। ऐसे सिद्ध किये द्रव्यकी अरिष्ट संज्ञा है।

३—सीधु-सीधु इक्षु रसैः पक्वैः।

गन्ने या ईख के रसको पकाकर—बिना किसी औषधके केवल इसे ही सन्धानके लिये रख कर जो मद्य तय्यार की जाय उसकी सीधु संज्ञा है।

४—वारुणी-यत्तालखर्जूररसैराश्रता सैव वारुणी।

ताड़ या खजूर वृक्षके शिखर समीप कुल्हाड़ीसे उसके कुछ भागको तिरछा काट देते हैं। इससे तमाम वृक्षका रस जो नीचेसे

ऊपरको पत्तोंके पोषणार्थ जाता है वह रस कटे हुए भागसे स्रव पड़ता है। उस रसको लोग हांड़ी लगाकर संग्रह कर लेते हैं। उस रसमें माड़ी होती है और फल शर्करा होती है। माड़ी वृक्षसे स्रवते समय शर्करामें बदलती रहती है और वह शर्करा मद्य कणोंमें बदलती रहती है। इस तरह जो ताड़ वृक्षके रससे मद्य तय्यार होता है उसकी ताड़ी या वारुणी संज्ञा है। पुनर्नवा मूल व चावलोंकी पिष्टी करके उसे जलमें घोलकर जो सन्धान करते हैं उसको भी कोई-कोई ग्रन्थकार वारुणी नाम देते हैं।

५—**सुरा**-परिपक्वान्नसन्धान समुद्भूता सुरामता।

अन्न (जौ, चावल, कोदो आदि) को पकाकर उसमें मीठा डाल सन्धानके लिये रखकर जो लाहन उठाते हैं उसकी सुरा संज्ञा है। सुराके चार भेद हैं। यथा—

गौड़ी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथिता परा।
इति चतुर्विधा ज्ञेया सुरास्तासां प्रभेदकाः॥

१ **गौड़ी**-गुड़ डालकर सन्धानकी या उठाई हुई सुरा का नाम गौड़ी है।

२ **माध्वी**-महुआके फूलोंको पानीमें डालकर सन्धानकी हुई सुराका नाम माध्वी है।

३ **पैष्टी**-जौ, चावल, कोदो आदिको भिंगोकर पानीमें पीसकर, पानीमें घोलकर सन्धान की हुई सुराका नाम पैष्टी है।

४ **निर्यासा**-ईखका रस और फलोंका रस निकालकर उसको सन्धानके लिये रखकर जो सुरा तैय्यार की जाती है उसका नाम निर्यासा है। इन चारोंकी सुरा संज्ञा है।

६ **मैरेय**—आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने।
सन्धानं तद्विजानीयात् मैरेयं उभयात्मकम्॥

या—मालूर मूलं बदरी शर्करा च तथैव च ।
एषामेकत्र सन्धानात्मैरेयी मदिरामता ॥

कुछ आसवके द्रव्य तथा अन्न-फल-रसादि दोनोंको मिलाकर सन्धानके लिये रखकर जो लाहन उठाया जाय उस उठे हुए या सिद्ध द्रव्यका नाम मैरेय है। अथवा बबूल-बेरकी छाल और गुड़, खाँड़ मिलाकर जो सन्धान करते हैं उसका नाम भी मैरेयी है ।

आसव-विज्ञान प्रथम संस्करणकी समालोचना करते हुए धन्वंतरिने लिखा था कि "आसव-विज्ञानमें स्वामी जी ने आसवको मद्य सिद्ध करनेकी भरपूर चेष्टा की है"—क्या आसव मद्य नहीं ? क्या मैंने अपनी ओरसे आसवको मद्य सिद्ध करनेकी चेष्टा की ? हरगिज़ नहीं ।

प्रथम तो आसवके लक्षणमें ही शार्ङ्गधरने "सिद्धं मद्यं स आसवः" । सिद्ध मद्य वही आसव है, ऐसा लिखकर भ्रमकी निवृत्ति कर दी है। यदि अब भी शंका हो तो भाव प्रकाशके इस श्लोकको पढ़िये । यथा—

पेयं यन्मादकं लोकं तन्मद्य मभिधीयते ।
यथारिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ॥ भावप्रकाश ।

आसवको लोग नशेके लिये पीते हैं इसी लिये इसकी मद्य संज्ञा है। और उसीके अरिष्ट, सुरा, सीधु, आसवादि अनेक भेद हैं। मद्य-कोई आसवसे भिन्न वस्तु नहीं। भारत भैषज्य रत्नाकरका लेखक इसके प्रथम भाग पृष्ठ ५४ पर लिखता है। "यद्यपि आसव अरिष्ट मद्य हैं परन्तु इनसे नशा नहीं होता।" आसवमें मादकता ही उसका प्रधान लक्षण है। फिर इससे नशा न होना ऐसी ही बात कहना है कि "गुड़ खानेमें मीठा नहीं

होता"। इसमें मादकता है और होती है, इसको मैं नहीं, प्रत्युत शास्त्र सिद्ध करता है। यथा—

यानि संस्कारनामाद्यैः विशेषैर्बहुधा चया।
भूत्वा भवत्येकविधा सामान्यात्मदलक्षणम्॥

अर्थात्—आसव अनेक द्रव्योंसे बना भिन्न-भिन्न रूप, गन्ध, स्वाद, गुणवाला होता है। और पक्व अपक्व संस्कार भेदसे बनाया जाता है। इसीलिये भिन्न-भिन्न नाम वाला है तथापि उन सवोंमें मादक धर्मका होना आसव का मुख्य लक्षण है। यदि इसको मादकताके लिये अधिक मात्रामें न पिया जाय किन्तु तोला-तोला दो-दो तोला रोग विशेषके समय औषध रूपमें उपयोजित किया जाय तो यह नशा नहीं करता। ऐसी स्थितिमें उसे मद्य नहीं, आसव ही कहेंगे। इस तरह आसव व मद्य उनके सेवनीय कर्मोंसे दो नाम हैं।

आसव नामकी प्रधानता।

इस समय हमारे सामने चरक संहिता, अग्निवेश संहिता आदि ही प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं। उनमें इन आसवोंके नामान्तर भेदोंको आसव नामके भीतर ही माना है। और उन्होंने (चरकजीने) धान्य, फल, पत्र, पुष्प, छाल, सार, गोंद, प्रकाण्ड और खाँड़, यह वृक्षके नौ अङ्गोंसे नौ-नौ प्रकारके आसव बताये हैं। खाँड़ या मीठाको भी मुख्य अङ्गोंमें स्थान दिया है। एक-एक वृक्षके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे जो अनेकों आसव तय्यार किये जा सकते हैं उनके सम्बन्धमें उनका कथन है कि इसके अनेकों भेद बन जानेपर भी ८४ भेद निश्चित होते हैं। यथा—किस-मिस, खजूर, खम्भारी फल, जामुन, खिन्नी, फालसा, हरड़,

बहेड़ा, आँवला आदि कोई २६ फलासव भिन्न-भिन्न वृक्षोंके मूल व कन्दसे बनने वाले ११ आसव तथा वृक्षोंके सार, सत्व, गोंद आदिसे २० आसव, कोदों, कंगुनी, जौ, चावल आदिसे बननेवाले ६ आसव, पत्र-पुष्प आदि अन्य वनस्पति अङ्गोंसे बननेवाले ४१ आसव, इस तरह कुल ८४ आसव हैं। समस्त आसव समधर्मी हैं। इनके सम्बन्धमें आपने आसवको निरुक्ति देकर इसको निम्न लिखित रूपसे सिद्ध किया है यथा—आसवानामासुतत्वादासव संज्ञा। चरक—आसूयत इति आसवः। सन्धान द्रव्यके तत्व भाग (मद्य) को स्रवाये या चुवाये जानेसे इसकी आसव संज्ञा है। इसीका स्पष्टीकरण वृद्ध शौनिकने इस प्रकार किया है।

दिनानि कतिचिद् "किण्वं" गुडादौस्थापयेद्भिषक्।
ततो विक्लित्तिमापन्नं यन्त्रैश्चनाडिकादिभिः॥
विधिवत् स्रावयेदस्मादन्यपात्रे स्रुतं रसम्।
गृह्णीयात् स सुरा ख्याता—

अर्थात्—औषध, अन्न, गुड़ आदि पानीमें मिला किण्व डालकर कुछ दिन सन्धानार्थ रख देवें। जब सन्धान पूरा हो जाय उसे नाड़ियन्त्र या वकयन्त्रमें डालकर उसका विधिवत् तत्व (मद्य) रस परिश्रुत करके ग्रहण करें, उसको सुरा या आसव कहते हैं।

यह स्मरण रहना चाहिये कि चिकित्साशास्त्रमें आसव और अरिष्ट यही दो नाम प्रधान माने गये हैं। अरिष्ट भी आसवका साधारण क्रियाभेदके कारण नामान्तरमात्र है। वास्तवमें आसव ही प्रधान था। अरिष्ट का अर्थ है नाश न होनेवाला अर्थात् जिनका रूप, गुण और स्वभाव चिरकाल तक नष्ट न हो उसे अरिष्ट कहते हैं। अरिष्ट आसवका एक गुणात्मक नाम है, ऐसा कहना चाहिये।

आसवकी प्रधानता का एक और कारण—जितने भी आसव अरिष्ट नामसे योग मिलते हैं सबको औषध रूपमें ही उपयोजित किया गया है क्योंकि, जितने भी आसव अरिष्ट हैं सब रोग विशेषके लिये उपयोगी औषधसे तय्यार किये जाते हैं। इस तरह सीधु, वारुणी, सुरा, मैरेय आदि औषधसे नहीं बनते। सीधु, वारुणी, सुरा आदिका उपयोग प्रायः मादकताके लिये ही किया जाता था। इसीलिये यह औषधका स्थान न प्राप्त कर सके। औषधका स्थान इन्हें न मिलनेके कारण ही यह अप्रधान रहे तथापि, यह नहीं कि इन्हें आसवकी श्रेणीसे बहिष्कृत कर दिया गया हो; प्रत्युत, उसके साथ ही इन्हें भी उसी श्रेणी में स्थान मिला है।

आसवका एक महान् गुण

पूर्वाचार्योंने देखा कि जिस औषधमें पानी डालकर पकावें या इसी तरह जलमें मिलाकर रख दें तो वह कुछ दिन में पड़ा-पड़ा खराब हो जाता है। बन्द बोतलोंमें रखे वानस्पतिक रस व काथ थोड़े समयमें बिगड़ जाते हैं और उन रसों तथा काथोंमें वह गुण नहीं रहता। किन्तु उक्त रस, हिम या काथ में जब मिष्ट पदार्थ डालकर सन्धानार्थ रख देते हैं और वह तय्यार हो जाता है तो उसको चहे वर्ष दो वर्ष रख छोड़ें, खराब नहीं होता। जिस औषधको डालकर वह बनाया गया है उस औषधके गुण धर्म भी यथावत् ही बने नहीं रहते, प्रत्युत उस सन्धानजनक द्रव्यके कारण उसके उक्त गुण, प्रभाव बढ़ जाते हैं। "पुराणास्युर्गुणैर्युक्ताः" जब इस बातका ज्ञान हुआ तो वह इस विधि को औषधके रूपमें, औषधके संरक्षणार्थ व्यवहार में लाने लगे।

पूर्वाचार्योंने आसव किसको माना ?

यहाँपर अब विचारनेके लायक यह बात रह गई कि आचार्योंने आसवसंज्ञा दी तो किसको दी ? जल आसव नहीं है, क्वाथ आसव नहीं, मीठा आसव नहीं, न इन तीनोंका मिश्रण ही आसव है—फिर आसव क्या है ? इसका स्पष्टीकरण तो पीछेके प्रमाणोंसे हो चुका है, अब केवल उसकी व्याख्या करनी रह गई है। वास्तव में आसव क्या वस्तु है ? मिष्टभाग और पानीमें अनेक द्रव्योंको घोलकर विधिपूर्वक रख देनेपर जो सन्धान (किण्वक्रिया) उठ खड़ा होता है, उस सन्धान कालमें जो मादक वस्तु बनती या उत्पन्न हो जाती है, उसका नाम आसव है। जिस चीज़में मादकता है वह न तो पानी है, न अन्य औषध, अन्न आदि और न मीठा है, प्रत्युत वह इन सबोंसे भिन्न ही द्रवरूप पदार्थ है। इसी बातको जानकर चरकजी ने "आसुतत्वात्" तत्वरूपसे चुवाया या परिश्रुत किया हुआ—अर्थात् सन्धानकालमें जो वस्तु नई बनी—उस साररूप वस्तुका नाम आसव दिया और उसका सामान्यतः गुणधर्म "मदलक्षणम्" से बता दिया। यह वैद्योंसे छिपा नहीं कि जिस समय किसी सन्धानित द्रव्यको वक यन्त्रसे परिश्रुत कर लिया जाय तो जितना भी मदकारी अंश होता है वह जल-वाष्पके साथ उड़कर उससे भिन्न हो जाता है। रहे हुए अवशिष्ट द्रवमें कोई मादकता नहीं होती। मादकता उस परिश्रुत जलमें मिले द्रव्यके कारण पाई जाती है किन्तु उस जलका नाम आसव नहीं प्रत्युत उस जलमें विद्यमान उस सार भागका नाम आसव है जिसका मुख्य धर्म है मादकता और यही चीज़ है जो द्रव द्रव्योंमें होनेसे उसके रूप, गुण, धर्मका

संरक्षण करती है। आजकल इसीका नाम है Alcohol जिसमें जलका अंश तक नहीं होता। जिसमें ५ प्रतिशत जल होता है उसका नाम Spirit Rectified है।

यह विश्वास करनेके लिये काफी साधन है कि उस प्राचीन समयमें आसवको वह जलसे बिलकुल ही पृथक् नहीं कर सके थे। शुद्ध रूपमें आसव प्राप्त करनेका साधन उस समय सुलभ न था। वक्र यन्त्रसे आसवको चाहे कितनी भी बार क्यों न परिश्रुत किया जाय जल रहित नहीं हो सकता। किन्तु, इतना न होनेपर भी आत्रेयजी इस तथ्यको अवश्य मालूम कर सके थे, कि सन्धानमें जो मदकारी द्रव्य उत्पन्न होता है वह परिश्रुत करने पर भिन्न किया जा सकता है और उसको जलाने पर वह जल उठता है, पानी नहीं जलता। उसी परिश्रुतमें आये साररूप द्रव्यका नाम ही आसव है। इस समयके परिभाषा बनानेवाले व्यक्तियोंने विशुद्ध आसव का नाम मद्यसार दिया है। (Alcohol) का पर्याय मद्य-सार किया है। मद्य शब्दको रूढ़ि मान लिया है। वास्तवमें मादकताके कारण मद्य शब्दकी रचना हुई है। इसलिये जिसमें मादकता है ऐसा जो (Alcohol) या आसवका सार है उसको तो आजतक किसीने निकाला ही नहीं प्रत्युत, वह तो स्वयम् सार रूप है। इसलिये, मद्यका सार क्या ? कुछ विद्वान् कहेंगे कि प्रायः इस समय जितने भी साधारणतया सन्धानके पश्चात् परिश्रुत किये आसव होते हैं उन सबोंमें जलकी मात्रा होती है; उन जल-युक्त आसवोंका नाम मद्य ही प्रचलित हो रहा था, तो जल रहित आसवको उसका सार नाम दे दिया। क्या दोष हुआ ? इस तरह जो चाहो नाम देदो। आयुर्वेदमें एक-एक वस्तुके पचास-पचास तक नाम दे दिये गये हैं, किन्तु वे सब सार्थक नहीं। हमने भी तो विशुद्ध आसव

(Alcohol) का नाम हलाहल और ५ प्रतिशत जलयुक्त आसव (Spirit Rectified) का नाम हली दिया है। यह नाम भी परिभाषा रूपमें रूढ़ होनेके लिये दिये गये हैं। हलाहल और हली दोनों ही उग्र विषके पर्याय हैं। शुद्ध आसव या ५ प्रतिशत आसव भी उग्र विष है। नामवत ही इनमें गुण भी पाये जाते हैं। जिस तरह ५ या १० प्रतिशत आसवका एलोपेथीमें (Tincture) नाम है, उसी तरह आयुर्वेदमें सन्धान द्वारा औषध द्रवमें विद्यमान मद्ययुक्त द्रव्यका नाम आसव रूढ़ हो गया। इस समय आसव कहनेसे यही समझा जाता है कि औषध क्राथका सन्धान सिद्ध एक द्रव्य। जिस औषधका सन्धान-सिद्ध द्रव्य है उसका नाम उस आसवके साथ जोड़ दिया जाता है। यथा-द्राक्षासे बना द्राक्षासव, दसमूलसे बना दशमूलासव, कुमारी रस मिला कर बना कुमार्यासव इत्यादि, हम भी इस ग्रन्थमें आसव शब्दको इसी कोटिमें रूढ़ करते हैं। आसव कहनेपर बिना परिश्रुत किये जो सन्धान सिद्ध द्रव हो उसीका अर्थ समझना चाहिये।

औषध रूपमें परिश्रुतकी आवश्यकता नहीं।

जब हम किसी विशिष्ट गुण सम्पन्न औषधका द्रव बनाकर उसको सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमारे पास यही एक क्रम था कि हम उसमें सन्धानके द्वारा आसव उत्पन्न करें और जब उसमें आसव उत्पन्न हो जाय तो उस द्रवको छानकर बोतलोंमें भरकर रखलें। जभी उस औषधके गुण, स्वभाव उसमें सुरक्षित रह सकते थे। यदि हम उसमें उत्पन्न आसवको उड़ालें, परिश्रुत करलें तो उक्त औषधके समस्त गुण उस परिश्रुत आसवमें कदापि नहीं आ सकते। वनस्पतियोंके क्षारोद, गोंद, उद्वायी, अनुद्वायी

स्नेह तथा अन्य उपयोगी भाग परिश्रुत करनेपर सब नहीं उड़ पाते, केवल उद्वायी तैल ही उसके साथ उड़कर जा सकते हैं। दूसरे परिश्रुत आसवमें जलकी मात्रा कम हो जाती है, आसवकी बढ़ जाती है। इसीलिये वह अधिक तीक्ष्ण हो जाता है। वह औषधके रूपमें नहीं प्रत्युत उसे फिर मदकारिता के लिये प्रयुक्त करने लगते हैं। इस समय सञ्जीवनी सुराको लोग सौमेंसे ९९ आदमी नशेके लिये पीते हैं। किन्तु आसवको सिवाय औषध रूप के शौकिया या नशेके लिये कोई नहीं पीता। क्योंकि, उसमें हलाहल की मात्रा १०—१५ प्रतिशतसे अधिक नहीं होती।

जो परिश्रुत नहीं किया गया ऐसा १५ प्रतिशत तक हला-हलक-औषध रूप आसव एक्साइज़ एक्टके द्वारा भी निषिद्ध नहीं। हमें औषधके लिये बनाते समय सिवाय साधारणतः अच्छे छन्नोंसे छानकर उसकी मलिनता, गाद आदि दूर कर देनेके सिवाय और कुछ नहीं करना चाहिये। शास्त्रकारका औषधो-पयोगमें यही अभिमत रहा है।

क्या आसवका ज्ञान प्राचीन है ?

आर्य-जातिका सर्वसम्मत प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। वेदोंमें सुराका कई जगह नाम आया है, लोग उसे नशेके लिये पीते थे, यह भी उससे बोध होता है। जब सुराका उल्लेख है तो वह सुरा उस आसवका एक भेदही तो है! जिस तरह आसव बनता है उसी तरह सुरा बनती है। वेद चिकित्सा ग्रन्थ नहीं, यदि उस समयका कोई चिकित्सा ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय तो विश्वास है कि उसमें आसवका अवश्य उल्लेख मिल सकता है। सुराको

जनता, या बड़े-बड़े राजा, सेनापति, होता आदि उपयोगमें लाते थे; इसलिये इसका उल्लेख अन्य सामाजिक वस्तुओंके साथ वेदोंमें आया। किन्तु, आसव नाम उन औषध संयुक्त सन्धानित द्रव से था—जिसके उपयोगकी अनुमति चिकित्सक ही देता था। वेदोंमें चिकित्सा सम्बन्धी कोई विशेष चर्चाका स्थल न आनेसे इस नामका अभाव रहा, तथापि यह विश्वासके लिये सुरा शब्द काफी प्रमाण रखता है कि वेदोंके समयमें लोग इसके निर्म्माण विधिको अच्छी तरह जानते थे। इसका ज्ञान प्राचीन है। ऋग्वेदका समय तो सभ्यताका युग कहलाता है किन्तु, हम समझते हैं कि आसव निर्म्माण प्रथाका ज्ञान मनुष्यको उस समय से था जबसे वह पात्रमें वस्तुओंका-विशेषकर मीठी वस्तुओंका संग्रह करना सीख गया था।

आसव निर्म्माण एक स्वतः होनीवाली प्रक्रिया है।

यव, चावलोंको भीगे पड़े रहने दिया जाय या इन्हें किसी पात्रमें पानी डालकर भिगो दिया जाय तो प्रायः देखा जाता है कि इनके माड़ी भागमें एक विशेष प्रकारका सन्धान उठ खड़ा होता है। यव या धानके अंकुर फूटनेके समय भी ऐसा होता है। उस माड़ीके कण उस समय शर्करामें या मीठामें बदलते चले जाते हैं। उसके साथ ही या उसके बाद ही उस मीठेमें जब किण्व पहुँचकर उसमें पुनः सन्धान उत्पन्न कर देते हैं तब इससे उस मीठेके कण आसवमें बदलते चले जाते हैं।

यदि मीठे फल या इक्षुरस या कोई और वनस्पतिका मीठा रस या द्रव किसी पात्रमें डालकर रख दिया जाय तो उससे भी यही परिणाम प्राप्त होता है। वह भी आसवमें बदल जाता है।

ताड़ी, खजूरका रस तो दो चार घण्टेमें ही आसवमें परिणत हो जाता है।

सभ्यताके आदि कालमें जब मनुष्य मीठी वस्तुओंका उपयोग करने लगा, मीठे फल, यव आदि या इक्षु रस आदि मीठे द्रव्य पात्रमें रखने लगा उसी समयसे आसवका आविर्भाव मानना चाहिये।

रहा इसके उपयोगका ज्ञान, उस समय भी हो सकता है और उसके कुछ काल बाद भी। यह तो मनुष्यके पीनेपर निर्भर है। जिस मीठे फलोंके रसको उसने पात्रमें भरकर रख दिया, किसी कारणसे वह दो चार दिन पड़ा रहा, वह आसवमें बदल गया। उसे जब उसने चखा, उसका उसे और ही स्वाद मिला। कोई उसको फेंक सकते हैं, कोई उसे इस विचारसे पी भी सकते हैं कि यह आखिर फलोंका रस या मीठा वही रस था जो हमने रखा था। जिस किसीने उसको अधिक मात्रामें पिया उसीको ही उसकी मादकताका अनुभव हो सकता है। इस तरह इसके आविष्कारका श्रीगणेश समझना चाहिये; यह विकास सिद्धान्तके अनुकूल बात है। आगे चलकर बुद्धिमानोंने उसके उपयोगी गुणोंको समझकर उससे लाभ उठाया। यह समयसे सम्बन्ध रखनेवाली बात है और इसको बताना कठिन है कि इसके उपयोगका आरम्भ कबसे है। तथापि कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं।

व्यावहारिक ज्ञानका कारण।

जब हम किसी ऐसे नये पदार्थको मालूम करते हैं जिसके समस्त गुणोंका ज्ञान नहीं होता किन्तु उसके एक-आध गुणसे

परिचित हो जाते हैं और उसको, इसके उस गुणके कारण उपयोगमें लाते रहते हैं तो समय पाकर निम्नलिखित कारणोंसे उसके अन्य गुणोंको भी जान लेते हैं।

१—अनुसन्धानकी जिज्ञासासे।

२—भूलसे।

३—कई अन्य आकस्मिक कारणोंसे।

मनुष्यको जबतक किसी वस्तुके गुण सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता तबतक वह वस्तु उसकी दृष्टिमें कोई महत्व नहीं रखती। किन्तु जब उसके सम्बन्धमें ज़रा भी पता हो जाय तो उसकी ओर वह फिर अपना ध्यान समय-समयपर देता रहता है और फिर उक्त कारणोंमें से कोई न कोई कारण उसके अन्य गुणोंको समझनेमें सहायक होते हैं। इसका हम एक बहुत अच्छा रोचक उदाहरण रखते हैं।

मिट्टीके तेलका आविष्कार

मिट्टीके तेलके आविष्कारका इतिहास बतलाता है कि इसका पता इस तरह लगा कि एक बार कुछ व्यक्ति रास्तेमें जाते हुए एक ऐसे स्थानपर ठहर गये, जहाँ जलका स्रोत था। वहाँ उन्होंने रोटी बनाई। उस जलस्रोतमें मिट्टीके तेलका भी स्रोत था। उस जलमें मिट्टीके तेलका भाग मिश्रित होकर आ रहा था। उनके रोटी पकानेके समय ऐसी घटना घटी कि किसी तरह बलती हुई अग्निका स्पर्श उस स्रोतके तेलसे हो गया। वह तेलका चश्मा अग्निका स्पर्श पाते ही बल उठा। पानीमें अग्नि लगानेका चमत्कार देखकर वह हैरान हो गये, उनके लिये यह एक आश्चर्य-की बात थी। उन्होंने इसकी चर्चा अपने शहरमें आकर की।

कई तो इस बातकी चर्चासे केवल विस्मित होकर ही रह जाते थे। किसी बुद्धिमान् ने विचारा, यदि इसको प्राप्त कर लिया जाय तो वह बालने के काममें आ सकता है। उसने इसकी चर्चा अन्य बुद्धिमानोंमें छेड़ी। विचार विनिमयके पश्चात् वह इसको पानीसे पृथक् करनेकी सोचने लगे। जिसने इसे पानीसे पृथक् किया, उसने इससे लाभ उठाया। फिर उसने इसके ज्वलनशील गुणको देख अनेक प्रकारके उपयोगी कामोंमें लानेको सोचने लगा। जिसके परिणाम स्वरूप बालनेके लम्पोंका आविष्कार हुआ, इसके लम्प जबतक विद्युत नहीं था—इतने उपयोगी सिद्ध हुए कि इसका व्यवहार संसारव्यापी हो गया।

एक गुणके पश्चात् अन्य गुणोंका भी पता चला

इसके ज्वलनशील गुणने जब इसे सर्वप्रिय बना दिया तब घर २ में मिट्टीके चिराग़ चलने लगे। हरएकके घरमें मिट्टीके तेलकी बोतलें पहुँच गईं। इसके इस ज्वलनशील गुणने अन्य गुणोंके उद्घाटनका मार्ग खोल दिया। यह किसको मालूम था कि मिट्टीका तेल किसी रोगमें भी उपयोगी हो सकता है, कौन जानता था कि यह मालिसके भी काम आ सकता है। पर नहीं, भूलसे अकस्मात् ही इसके अन्य गुणोंका भी पता चल गया। कई आदमी जल या औषधके धोखे इसे पीगये। मालिसकी, औषधके स्थान पर इसकी मालिस कर बैठे, जिसका परिणाम दर्द आदि पर अच्छा देखा गया, इस तरह इसके अन्य उपयोगी गुणोंका पता चल गया।

ठीक यही बात ऐसे ही कारण आसवकी उपयोगितामें दिखाई देते हैं, आरम्भमें जब आसवके नशेका ज्ञान हुआ प्रथम लोग

इसे नशेके लिये पीते रहे। नशा एक ऐसी बुरी बला है कि यदि बन्दर, गोरीलाको भी लग जाय तो वह भी उसका गजबका आदी हो जाता है। समय पर नशेके लिये तड़पता है, फिर मनुष्यका क्या कहना है।

वेदोंमें सुराका उपयोग पढ़कर भी इस बातकी पुष्टि होती है कि उस समय लोग सुरा पीते थे। जिस चीज़का पान किया जाय, उसके अन्य गुणोंका पता लगना इतना कठिन नहीं। आरम्भमें आसवको परिश्रुत नहीं किया जाता था, न परिश्रुत करनेके साधन ही सम्भव थे। वेदोंके जमानेमें परिश्रुत करना जान गये थे।

जबतक उसे लोग परिश्रुत नहीं करते थे वैसे ही पीते थे उस स्थितिमें किसी बुद्धिमान चिकित्सकने इसके कुछ गुणोंको जानकर इसे ऐसी वनस्पतिके रस, क्वाथ आदि या चूर्ण आदिके समिश्रणसे बनानेका प्रयत्न किया जिनका वह औषध रूपमें किन्हीं विशेष रोग पर उपयोग करता था। उस औषधके योगसे बने आसव की जब उसने उन रोगों पर परीक्षा ली, जिसमें कि वह औषध अन्य रूपोंमें प्रयुक्त करता था, इसने वैसा ही या उससे अच्छा लाभ दिया। बस, तभीसे औषध संयुक्त आसव बनानेकी प्रथा चल पड़ी। सारांश—

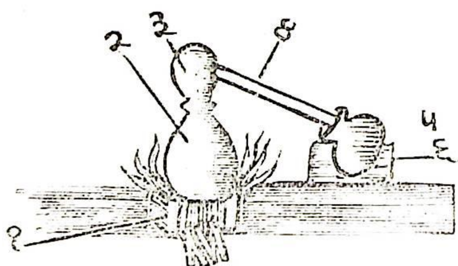
पहिले खाली मिष्ट द्रव्यके सन्धानका आविष्कार हुआ और उसके उपयोगका पता लगा, उसके कुछ समय—या हो सकता है हज़ारों वर्षोंके बाद परिश्रुत करनेके साधन मालूम किये गये। ऐसे ही समयोंमें या इससे आगे या पीछे औषध संयुक्त आसव निर्म्माण प्रथाका आविष्कार हुआ, ऐसा वेदों तथा अन्य ग्रन्थों और मानवी इतिहासकी रूपरेखासे कुछ झलक प्रतीत होती है।

नाड़ी यन्त्रके आविष्कारका इतिहास

आसव पीनेकी प्रथाका जब काफी प्रचार हो गया, जनता इसे आम बनाने लगी या बनानेके साधन जान गई। उन्हीं समयोंमें आम बनानेवालोंको इस बातका पता चला कि आसव बन जानेपर जितनी मादकता इसके ऊपरी भागमें होती है उतनी नीचेके भागमें नहीं होती। वास्तवमें हलाहल जलसे कुछ ही हल्का होता है, इसीलिये इसके नीचेके गाढ़े भागकी अपेक्षा ऊपर पतलापन ज्यादा रहनेसे उसमें हलाहलकी अधिक मात्रा होती है। दूसरे, इसमें जलकी अपेक्षा कम अग्निपर उड़नेका भी धर्म है। प्रायः यह खुला रहनेपर उड़ा भी करता है। और खुला रहनेपर खट्टा भी हो जाता है और मादकता घट जाती-या जाती रहती है। सम्भव है, खट्टा हो जानेके कारण किसीको यह सूझी हो कि यदि इसे गरम कर लिया जाय तो सम्भव है खटाई जाती रहे। इस विचारसे या किसी अन्य कारणसे जब उसने इसे अग्नि पर गरम किया तो उसे गरम करते समय हलाहलके उड़नेसे उत्पन्न हुई गन्ध द्वारा इस बातका पता चल गया कि यह गरम करने पर उड़ जाता है; अथवा उबालने पर भी बचे जगल भागको पान करनेसे भी इस बातका ज्ञान हो सकता है कि मदकारक चीज़ इसमें नहीं रही, उड़ गई है। क्योंकि जगलमें मादकता नहीं होती। खैर! ऐसे ही कारणोंसे हलाहलके उड़नेका पता मनुष्यको लग गया। जब उसे इस बातका पता लगा कि आसवसे मदकारी अंश गरम करनेपर उससे पृथक् हो जाता है—उड़ जाता है, तो फिर उसे किस प्रकार संग्रह किया जाय, इसकी विधि सोचने लगा। जिसके परिणाम

स्वरूप ही नाड़ी यन्त्र या वक यन्त्रका आविष्कार है। नाड़ी यन्त्र या वक यन्त्र कोई पेंचीदा यन्त्र नहीं। थोड़ेसे परिश्रमसे बनाया जा सकता है।

पहिले समयमें मिट्टीके ही बड़े-बड़े वर्त्तन बना करते थे। हड़प्पा और महञ्जोदड़ोंकी पुरातत्व सम्बन्धी खुदाइयाँ इस बातकी साक्षी हैं कि आजसे ६-७ हज़ार वर्ष पूर्व लोग बड़े २ मिट्टीके वर्त्तन बनाना जानते थे, उन्हीका वह प्रायः व्यवहार करते थे। प्राचीन समयमें मिट्टीके पात्रमें ही आसव उठाया जाता था तथा मिट्टीके पात्रोंको ही अग्नि पर चढ़ाते थे और उसीके छोटे वर्त्तनसे बड़े वर्त्तनका मुँह ढँक देते थे तथा बाँसकी पोंगोकी नाली लगाकर सुरा चुवाया करते थे। आज भी जंगली पहाड़ी लोगोंमें सुरा परिश्रुत करनेकी यही विधि वर्त्ती जाती है। देखो चित्र नं० १



(चित्र नं० १)

उपरोक्त चित्र देखनेसे ज्ञात होगा कि इस यन्त्रकी रचना कोई विकट नहीं। इसमें नं० १ चूल्हा है जो पृथ्वीमें खोदकर बनाया जा सकता है या पत्थर ढेलोंको चुनकर तय्यार किया जा सकता है। नं० २—इसपर वह बड़ा मिट्टीका वर्त्तन है जिसमें आसव परिश्रुतके लिये डाला गया है। नं० ३—छोटा मिट्टीका वर्त्तन है जो बड़े वर्त्तन पर उलट कर ढँका हुआ है और उन

दोनोंकी सन्धिको कपड़मिट्टीसे बन्द किया हुआ है। नं० ४—उस नं० ३ के बर्त्तनमें एक तरफ छिद्र करके उसमें बाँसकी पोंगी या चोंगाका एक सिरा घुसेड़ा हुआ है और इसके सन्धि भागको भी कपड़मिट्टीसे बन्द किया हुआ है। नं० ५—एक दूसरा मिट्टीका पात्र है जिसमें उस नं० ३ का बाँसका एक सिरा रक्खा है। नं० ६—लकड़ीका कठौता या मिट्टीका नांद है जिसमें नं० ५ का पात्र तिरछा करके टिकाया हुआ है। इस यन्त्रको चूल्हेपर चढ़ाकर अग्नि बालनेपर जब आसव उबाल खाता है तो उसका हलाहल जलकी वाष्पके साथ उड़कर ऊपर आता है। चूँकि ऊपर वाष्पको निकलनेका कोई मार्ग नहीं, इसीलिये वह उस बाँसकी नालीमेंसे होकर नं० ५ के पात्रमें आता है। अनुभवसे ज्ञात हुआ कि यदि नं० ५ के पात्रको शीतल रक्खा जाय तो जलवाष्प और उसके साथ आया हुआ वह मादक द्रव्य भी द्रवमें परिणत हो जाता है। इसीलिये नं० ६ के बर्त्तनको शीतल जलसे परिप्लुत कर दिया। बस, फिर क्या था जितना भी उस आसवका मादक भाग उड़ता गया उस नं० ५ के पात्रमें द्रव होकर संग्रह होता चला गया। इस प्रकार इसने इस यन्त्रके द्वारा उस आसवके अधिक भागको प्राप्त कर नशेके रूपमें इसका व्यवहार किया।

ऐसे समयोंमें ही इसने गुड़से, महुआसे, अन्नसे, इक्षुरस आदिसे आसव तय्यार किया और उससे सुरा प्रस्तुत की। इन भिन्न-भिन्न चीजोंसे बनने वाली सुराके उसने सीधु, मधु, गौड़ी आदि भिन्न-भिन्न नाम कल्पित किये। ऐसे ही समयोंमें औषधियोंसे आसव निर्म्मित होने लगे। सम्भव है औषध निर्म्मित आसवोंको भी परिश्रुत करके देखा गया हो। और रोगियों पर सन्धानित तथा परिश्रुत दोनों आसवोंका अनुभव लिया गया हो। औषधमें आसवकी

उपयोगी स्थितिसे सिद्ध होता है कि चिकित्सकोंने इसे बिना परिश्रुत किये ही औषध रूपमें व्यवहारके योग्य समझा। इसी लिये आसवको खींचकर या परिश्रुत करके किसीने भी औषधके लिये उपयोगी नहीं बताया। सबोंने सन्धानके पश्चात् छानकर ही उपयोजित करनेका आदेश किया।

कुछ व्यक्ति कहेंगे कि कर्पूरासव, अहिफेनासव आदिको माध्वी, सुरा आदिमें बनाना लिखा है और संजीवनी सुरा तो स्पष्ट परिश्रुत वस्तु है। जिसे औषध रूपमें उपयोजित किया है। ऐसी एकाध विधि केवल अपवाद स्वरूप हैं। दूसरे कर्पूरासव व अहिफेनासवको पुनः सन्धानके लिये शास्त्र आज्ञा देकर इस बातको ही सिद्ध करते हैं कि परिश्रुत नहीं, सन्धानित आसव हो औषधोपयोगी हैं। यद्यपि सुरामें कर्पूरासव या अहिफेनासवकी वस्तुएँ डालने पर और उन्हें दबाने या सन्धानार्थ रखने पर उसमें कदापि सन्धान नहीं होता। यह केवल सन्धानका भ्रम ही है, जिसे उन्होंने परीक्षण द्वारा जाननेका प्रयत्न नहीं किया। किन्तु, उन्होंने आसव सन्धानकी उपादेयताको अवश्य इनपर लागू करके अपनी इस प्रक्रियाको सर्वोच्च सिद्ध कर दिया है।

कर्पूरासव-अहिफेनासवसे ही टिंक्चरका आविष्कार हुआ।

कर्पूरासव, अहिफेनासव वास्तवमें औषध आसवके एक विकसित रूप हैं। हमें अपनी प्राचीन प्रथाके अनुसार इतना ज्ञात था कि आसवमें औषध द्रव सुरक्षित रहते हैं, उनके गुण, स्वभाव नहीं बदलते। किन्तु उसे सुरक्षित रखनेका साधन था हमारे पास सन्धान विधि। कर्पूरासव, अहिफेनासव बनाकर भी हम यह न

जान पाये कि सुरा भी बिना सन्धान किये औषध द्रवोंको सुरक्षित रख सकती है। किन्तु विदेशी अनुसन्धान कर्त्ताओंका इस ओर ध्यान गया। उन्होंने इसकी परीक्षा ली तो उन्हें पता लगा कि सुरा में चूर्ण करके डाली हुई औषधियाँ—विना क्वाथ किये ही अपना बहुत सा गुण, धर्म युक्त अंश सुराको दे देती हैं अर्थात् सुरामें यह गुण है कि वनस्पतियोंके बहुतसे गुणदायी भागको अपनेमें घुलाकर उसे स्थिर रख सकती हैं। और उसमें उसी तरह औषधके गुण, धर्म स्थिर रहते हैं जैसे सन्धानित आसवमें। यदि यह आविष्कार या जानकारी वैद्योंने की हुई होती तो वह सन्धानके झंझटको कबका छोड़ देते। यह उसकी अपेक्षा सुलभ और परिष्कृत विधि है। सुरामें घोलकर आसव तय्यार करनेपर न तो क्वाथ पकानेका झंझट रहता है न सन्धान करने आदिका। इसमें तो सीधे ही एक सेर सुरामें १० तोलासे लेकर २० तोला तक वनस्पतियोंके चूर्णको खूब बारीक करके उसमें डाल देते हैं और उसे हिलाकर दो तीन दिन साधारण धूपके उत्तापमें रख देते हैं, बस जो अंश आवश्यक होता है वह सुरामें घुल जाता है उसे फिर छान लेते हैं, कपड़ोंमें नहीं, या तो छानने के यन्त्रोंसे या कागजके छन्नोंसे। इस तरह छना हुआ आसव बिलकुल स्वच्छपूर्ण गुणयुक्त होता है। जबतक हली या हला-हलके प्राप्त करनेकी उत्तम विधि ज्ञात नहीं हुई थी तबतक ऐलोपैथीके समस्त-टिंक्चर भी मद्य-विधिसे बनाये जाते थे। किन्तु जबसे हली और हलाहलको अर्थात् विशुद्ध आसवको जिसमें जलका लेशतक नहीं होता, प्राप्त किया गया। तबसे प्रायः ऐलोपैथीके समस्त आसव इसी हलीसे तय्यार किये जाते हैं।

चूँकि हली या हलाहलका परिश्रुत विधिद्वारा निकालना

एक्साइज़ एक्टके अनुसार निषिद्ध है, इसको लाइसेन्स लेकर निकालना पड़ता है। या सुरा परिश्रुत करनेवाली बड़ी २ फेक्टरियोंसे लेकर उससे टिंक्चर बना लेते हैं। इसीलिए यह अब वैद्योंके लिये सुलभ नहीं।

यह स्मरण रखना चाहिये कि हलो या हलाहल जिसमें जलका अंश नहींके तुल्य है वह वनस्पतियोंके जितना अधिक गुणदायी अंशको अपनेमें घुला लेती है इतनी सुरा नहीं घुला सकती। जलमें अनेक वनस्पतियोंके गुणदायी अंश घुलनेसे रह जाते हैं, किन्तु हलो या हलाहलमें वह सब आवश्यक अंश आ जाते हैं। दूसरे हलीसे बने टिंक्चर हमारे आसवोंकी अपेक्षा बहुत कम खट्टे होते हैं। तीसरे इसमें वनस्पतियोंका इतना अधिक गुणदायी अंश घुला रहता है कि हम उन्हें तोलोंकी मात्रामें पी ही नहीं सकते। उनकी मात्रा कुछ बूँदे ही होती हैं।

यदि वैद्य लोग अपने आसवारिष्टोंको आधुनिक टिंक्चर निर्म्माण पद्धतिसे बनाने लगें तो निश्चय ही बहुत सी औषधियोंके उपयोगी अंश जो, काढ़ा करने पर भी नहीं निकलते (निकले कहाँ से? जौकूट या उससे भी तो मोटी औषध कुटी होती है), वह आसवारिष्टमें मिल जानेके कारण अधिक प्रभावशाली बन सकते हैं। इसी तरह हम काथ करनेके पश्चात् जिसे उठाकर फेंक देते हैं, उसका कोई भी अंश अनावश्यक नहीं जा सकता। दूसरे उन आसवोंकी स्वच्छता बढ़ सकती है। तीसरे विकृति होनेसे बहुत कुछ सुरक्षित हो जाते हैं। चौथे उनकी मात्रा भी कुछ बूँदे ही रह जाती हैं। जिसे पीते हुए रोगीको भी आसवोंकी तीक्ष्णता या अम्लताका जैसा अनुभव होता है—कोई अनुभव नहीं होता। फिर यह बात नहीं कि यह हमारे प्राचीन आसव जैसा लाभ नहीं करेगा,

प्रत्युत उससे अधिक लाभ करेगा। यह मेरा निजी अनुभव है। हमने कई शास्त्रीय आसव इस तरह पर बनाये हैं और रोगियों पर उनकी परीक्षा भी अच्छी तरह की है। उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किन्तु, हम इन्हें बनाकर वेंच नहीं सकते, जबतक गवर्नमेंट से लाइसेन्स प्राप्त न करा लें। यह एक भारी अड़चन है।

आसव निर्म्माणकी प्राचीन पद्धति

आसव निर्माणके सम्बन्धमें कोई प्राचीन विस्तृत विधान नहीं मिलता। मालूम होता है, सन्धान प्रक्रिया कोई जटिल न होनेके कारण उन्हें अधिक व्याख्या करनेकी आवश्यकता न दिखाई दी। तथापि यथा तथा स्थानों पर जो उल्लेख आया है, उसकी जो व्याख्या दी है, उसे प्रमाण मानकर हम आगे चलेंगे। वास्तवमें आसव सन्धान प्रक्रिया अर्थात् खँमीर उठने (Fermentation) से बननेवाली वस्तु है। खँमोर उठानेके लिये कोई लम्बे चौड़े झंझटकी आवश्यकता नहीं, शास्त्र कहता है :—

घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मास मात्रकम्।

किसी घीसे परिप्लुत मिट्टीके पात्रमें आसवकी चीजें डालकर एक मास पर्य्यन्त रखा रहने दिया जाय तो आप ही आसव तय्यार हो जायगा। उसमें सन्धान प्रक्रिया या खँमीर उठना स्वाभाविक प्रक्रिया है, इसलिये शास्त्र कहता है कि "द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत्"। द्रवमें औषधको छोड़कर चिरकालके लिये रख देना काफी है। वह अपने आप उठ खड़ा होगा, अर्थात् उसमें स्वतः सन्धान प्रक्रिया होने लगेगी, वह पूर्ण कब होगी? इसकी अवधि "पक्ष मात्रकम् या मास मात्रकम्" पन्द्रह दिन या एक मास हैं। बस, जब देखें कि—

ततो जात रसं ज्ञात्वा परिश्राव्य रसन्नयेत्।

इसकी सन्धान प्रक्रिया बन्द हो गई है, उसका द्रव निर्मल हो गया है, गाद नीचे चली गई है, उस द्रवको छान लें।

सन्धानार्थ आसव कहाँ रखना चाहिये ?

सन्धानके लिये आसव पात्रको कहाँ रखना चाहिए ? इसका स्पष्टीकरण मुख्यरूपसे या सिद्धान्तरूपसे नहीं बताया गया है। गद निग्रहमें एक स्थानपर खजूरासवके निर्माणमें "क्षिप्त्वाक्षिपेत्पञ्च दिनानि भूमौ" अर्थात् वर्तनमें सब चीजें डालकर केवल पाँच दिन ज़मीनमें दवा दें। यह पाठ आया है। इसी ग्रन्थमें योग राजासवके निर्म्माणमें पाठ दिया है। "तद्भाण्डं धान्य राशिगम्" उस आसव पात्रको धान्य राशिमें दबा दें या "भूम्यां वा धान्यराशौ वा स्थापयेद्दिन विंशति" भूमिमें या धान्य राशिमें २० दिन दबा रखें, ऐसा भी लिखा है। इस तरह दो तीन स्थान पर भूमिमें गाड़ने तथा दो तीन स्थानपर धान्य राशिमें दबानेका उल्लेख मिलता है। इसी ग्रन्थमें एक स्थानपर २१ दिन धूपमें रखें, ऐसा भी लिखा है। ग्रन्थोंमें आसवोंकी संख्या लगभग एकसौके मिलती है, किन्तु प्रायः अन्य सब स्थानोंमें कहीं "मासं संस्थापपदे भाण्डे", कहीं "मासार्द्धं घृतभाण्डे तु", कहीं "घृत भाण्डे स्थितिं मासं" इत्यादि पाठ ही मिलते हैं। १५ दिन या एक महीने तक घीके वर्तनमें आसव सन्धानार्थ रखें, कहाँ रखे ? वैद्य यह वात परम्परा विधानसे जानें।

प्रायः देखा जाता है कि वैद्य लोग आसव बननेके लिये आसव पात्रको या तो अन्न तुष (भूसा = खलिहान) में दबा देते हैं या अन्नके ढेरमें। कहीं-कहीं ज़मीनमें गढ़ा खोदकर गाड़ देते हैं, चाहे कोई भी मौसम हो।

आसवपात्रका मुख खुला हो या बन्द ?

आसवपात्रका मुँह खुला रखना चाहिये या बन्द कर देना चाहिये ? इसकी छानबीन करें तो सिवाय एक दो स्थानके ऐसा कहीं प्रमाण नहीं दिखाई देता कि पात्रका मुँह अवश्य बन्द रखना चाहिये। भैषज्य रत्नावलीमें ही सारिवाद्यारिष्ट तथा अभयारिष्टमें पात्रका मुख बन्द करनेका संकेत है। हाँ इसी ग्रन्थमें जहाँ संजीवनी सुरासे साधित आसव बताये गये हैं, यथा—वासारिष्ट, अस्त्रहरारिष्ट आदि या संजीवनी सुरामें, वहाँ उसने अवश्य आदेश किया है। "मृदालिप्तं मुखे भाण्डे", "मृद्भाण्डे काचभाण्डे वा निरुध्य तन्मुखं दृढ़म्" या "मुख सम्बन्धनं कृत्वा"। इस तरह मुँह बन्द करनेका कहीं भी न तो दृढ़तासे आदेश किया गया है न मुँह खुला रहनेपर उसका कहीं निषेध ही किया गया है। किन्तु इसके सम्बन्धमें वैद्योंकी स्थिति क्या है ? इसको हम इस समय के कुछ ग्रन्थ लेखकोंके उदाहरण देकर बताना चाहते हैं। भारत भैषज्यरत्नाकरके संग्रहकर्त्ता तथा टीकाकार श्रीगोपीनाथजी गुप्त, भारत भैषज्य रत्नाकरके प्रथम भाग पृष्ठ ५४ पर आसव निर्म्माण विधिपर लिखते हैं।

"पात्र—आसवारिष्ट साधारणतः मिट्टीके पात्रमें ही बनाये जाते हैं, यद्यपि किसी-किसी स्थानपर स्वर्णपात्रमें भी आसव सन्धान करनेका विधान है। जिस पात्रमें आसव अरिष्ट तैयार करना हो पहिले उसे भीतरसे घी से भले प्रकार चिकना कर देना चाहिये और साथ ही धायके फूल तथा लोधके कल्कका लेप करके सुखा लेना चाहिये। एवं उपरोक्त विधिसे पात्र तय्यार करके उसमें क्वाथ (या जल) में मिश्रित गुड़, मधु, औषधियों-का चूर्ण आदि डालकर उसके मुखको शरावसे अच्छी तरह

बन्द करके उसके ऊपर कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये कि किसी स्थानसे वायु उसके अन्दर न जा सके। अब इस बर्तनको भूमिके अन्दर गढ़ेमें या अन्य किसी गरम स्थानमें १५ दिन या १ महीना (जैसी शास्त्राज्ञा हो) रखे रहने देना चाहिये।

इसके बाद आसव या अरिष्टको निकालकर छानकर बोतलों या पत्थरकी बरनियोंमें भरकर बन्द करके रख देना चाहिये ताकि अन्दर हवा न जा सके क्योंकि हवासे आसव खराब हो जाता है।

यदि बोतलोंमें भरना हो तो बोतलोंको मुँह तक लबालब न भरना चाहिये बल्कि थोड़ा स्थान खाली छोड़ देना चाहिये क्योंकि मुँह तक बोतल भर देनेसे आसवमें जोश आकर उसके बाहर निकल जाने या बोतलके फट जानेका भय रहता है।"

कविराज जगदीश प्रसादजी गर्गने आसवारिष्ट संग्रह नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें आप अपने गुरु अध्यापक लाला हरदयालजी आयुर्वेदाचार्य व वैद्य वाचस्पति द्वारा आसवारिष्ट निर्म्माण विधि—जो कि डी० ए० वी० कालेजमें रहते-रहते और आसवारिष्ट निर्माण करते-करते उनके अनुभवमें आई है—वह उनकी अपनी कलमसे लिखी आरम्भमें उद्धृत की है। उस विधिमें अध्यापकजीने प्रक्षेपका वर्णन करते हुये लिखा है—

प्रक्षेप—"उसके बाद प्रक्षेपकी जो औषध हों उनका बारीक चूर्ण करके घटमें डाल दें। तत्पश्चात् धातकी मधूक या कीकर छाल, जो मद्यको उत्पन्न करनेवाली वस्तु हों प्रक्षेपके बाद डाल दें, पुनः घटमें हाथ डालकर उसे खूब मिला दें। तदनन्तर घटके मुखपर दूसरा मृत्पात्र देकर मृत्तिकासे उसे बन्द कर दें। बन्द करते हुये यह ध्यान रखना चाहिये कि सन्धिमें छिद्र न रहने पावें। यह भी आवश्यक नहीं कि प्रक्षेप डालनेके

पश्चात् तत्काल ही मुख बन्द कर दिया जावे। उष्ण ऋतुमें तीन दिन तक और शीत ऋतुमें सात दिन तक यदि घटका मुख न भी बन्द किया जावें तो कोई हानि नहीं। कारण कि इन दिनों तक प्राय: कोई परिवर्त्तन उपस्थित नहीं होता। इसके बाद मुँह अवश्य बन्द कर देना चाहिये। बिना मुख बन्द किये भी बन जाता है, परन्तु मद्यभाग अल्प हो जाता है। अत: प्रचुर मद्यो-द्गमके लिये मुँह बन्द कर देना उत्तम है।" आपने शार्ङ्गधर पर रहस्यार्थ प्रकाशिका एक टीका लिखी है, जो लाहौरमें छपी है उसमें भी आपने आसवारिष्ट प्रकरणमें उपरोक्त क्रमका ही उल्लेख किया है।

गुरुकुल स्नातक रसवैद्य योगेन्द्रपालजी आयुर्वेदालंकारने क्रियात्मिक आयुर्वेद नामकी एक छोटीसी पुस्तिका लिखी है, उसमें आपने सबसे पहिले आसवारिष्ट पर ही अपना क्रियात्मक ज्ञान रखा है।

आप उस पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं :—

"कई योग्य महानुभावोंने कुछ आयुर्वेद विषयक पुस्तकें लिखी हैं लेकिन वे प्राय: अनुवाद मात्र होती हैं। संस्कृतसे हिन्दी, उर्दू या बंगलामें अनुवाद या संग्रह करना मात्र ही ग्रन्थ-लेखन नहीं कहलाता। ग्रन्थ लेखनके लिये कुछ मौलिकताकी भी आवश्यकता होती है। लेखकके दिमागमें कोई नवीनता या विशेष प्रेरणा होनी चाहिये, जिससे कि सम्पूर्ण ग्रन्थ शृङ्खला-बद्ध तथा युक्तियुक्त जान पड़े।"

उक्त उदाहरण देनेका अभिप्राय यह है कि आपने जो कुछ अच्छी तरह क्रियात्मक रूपसे समझा है उसका उल्लेख आपने अपनी इस पुस्तिकामें किया है।

इस पुस्तकमें आसव रचना पर विचार करते हुवे पृष्ठ ५९ पर आज्यभाजनकी उपयोगिता—शीर्षकमें आप लिखते हैं—

"आज्यभाजनसे अभिप्राय यह है कि आसव डालनेसे पहिले मटकेको भीतर घी से भींगे वस्त्र या रुई द्वारा अच्छी तरह तर कर देना चाहिये ताकि मटका आसव न चूसता रहे। आसवका परिमाण देर तक उतनाका उतना ही बना रहे।"

इससे आगे आपने चीनीके बरने व लकड़ीके ढोल आदि पात्रोंका भी वर्णन किया है। उन तीनोंके गुण दोष भी बतलाये हैं और वहाँ आपने चीनीके बर्त्तन या मिट्टीके मटके ही युक्तियुक्त सिद्ध किये हैं। लकड़ीके ढोलोंके सम्बन्धमें आप लिखते हैं—

"आयुर्वैदिक दृष्टिसे आसव वृक्षोंकी छाल या लकड़ीसे उठाये जाते हैं। ढोल भी लकड़ीके बने होते हैं। महीना भर आसव बन्द करनेका परिणाम यह होगा कि इसकी (ढोलकी) लकड़ीका भी आसव उठ जावेगा, जबकि चीनी तथा मिट्टीमें इसकी सम्भावना नहीं। आसवमें औषध रूप प्रयुक्त काष्ठ परिमाणमें या वजनमें ढोलकी लकड़ीसे बहुत कम होती है—परिणाम स्वरूप ढोलासव तय्यार हो जायगा। गुण स्वभाव तथा स्वादमें फ़र्क आवेगा।"

आगे आप लिखते हैं—"क्या मटकेका मुँह खुला रखना ठीक है ? मटकेका मुँह जहाँतक मुमकिन हो, कभी खुला नहीं रहने देना चाहिये। चूहा, छिपकिली और टिड्डीके गिरनेकी सम्भावना-की दृष्टिसे भी इसे बन्द रखना अयुक्तियुक्त नहीं, किन्तु इससे भी बढ़कर प्रबल कारण मौजूद है, जिनसे मुख बन्द रखना अत्या-वश्यक तथा अपरिहार्य है।" वह कारण आप निम्नमें देते हैं।

"(१) खमीर तभी उम्दा उठेगा जब कि भीतर गर्मी तथा आन्तरिक दबाव (Internal Pressure) बढ़ेंगे। यदि मुँह

खुला रहे तो वाह्य वायुमण्डलके संसर्गमें आनेके कारण न तो भीतरकी गर्मी स्थायी बनेगी और न तो अन्तरीय दवाव ही बढ़ेगा।

(२) जिस तरह शरीरमें श्वेताणु तथा रक्ताणु (Red and White Blood Corpusoles) स्वास्थ्य निम्र्माणमें यत्नशील रहते हैं, उसी तरह आसव निम्र्माण कृमि आसवमें विद्यमान होते हैं। जिस प्रकार बाहरसे आये रोगके कृमि रक्ताणु तथा श्वेताणुके प्रभावको कम या नष्ट करके स्वास्थ्यको बिगाड़ देते हैं, उसी तरह वाहरके भूरेसे रंगके खास मच्छर या कृमि आसवके कृमियोंके प्रभावको नष्ट करके आसव बिगाड़ देते हैं। परिणाम यह होता है कि आसव खट्टा तथा विकृत होकर सिरकेकी शकलमें परिवर्तित हो जाता है। आसवके कृमि वायुको उत्तमतया बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे उसके अभावमें खँमरीमें ही उत्पन्न होकर अपना कार्य अच्छी तरह सम्पादन करते हैं। यह कोई नई बात नहीं है। आम तौरपर घरोंमें अचार, मुरब्बे वगैरह इन्हीं भूरे रङ्गके मच्छरोंके बैठने मात्रसे बिगड़ते देखे गये हैं। ये मच्छर अपने अण्डे फौरन दे देते हैं। परिणाम स्वरूप उक्त वस्तुमें कुछकाल बाद सफेद रंगकी छोटी-छोटी सुण्डियाँ रेंगती हुई दिखाई देती हैं और वस्तु फेंकनी पड़ती है, इसीलिये कभी भूलकर भी आसवके मटकेका मुँह खुला न रक्खो।" आगे आप लिखते हैं—"क्या मटकेको ज़मीनमें गाड़ना युक्ति संगत है?—बहुधा पाठक भिन्न-भिन्न पुस्तकोंमें चार तरहके विचार पढ़ेंगे।

(१) मटकेका मुँह बन्द करके उसे जितने कालतक बन्द रखना हो ज़मीनमें गाड़ देना चाहिये।

(२) ज़मीनमें गाड़नेके बजाय धान्यराशि या तूड़ीमें दबा दें।

(३) मटकेको बन्द करके खुले मैदानमें रख दें—धूप और चाँदनी उसपर क्रमशः अपना प्रभाव डालती रहें।

(४) मटकेका मुँह कपड़मिट्टीसे बन्द करके एक साधारण कोठरीमें बन्दकर देना चाहिये।"

आपने ज़मीनमें गाड़ना, धान्यराशिमें दबाना तथा धूप और चाँदनीमें रखना उपरोक्त तीनों विधियाँ ही दोषयुक्त बतायी हैं। आप कहते हैं—"सामान्य प्रकाशयुक्त कोठरीमें रखना काफी है। गर्मीमें हवा आनेका प्रबन्ध रहे तथा सर्दीमें कोठरीका दरवाजा बन्द रहे। कई वैद्य महानुभाव शंका उठावेंगे कि जब दूधको जामन लगाकर दही जमाना होता है तो गरम कपड़े या कम्बलमें लपेटकर रखते हैं, ताकि ठीक तरह जम जाय; इसी तरह ख़मीर उठानेके लिये तूड़ी या धान्यराशिमें दबाना उत्तम है। उसका समाधान यह है कि जिस तरह दूध जमानेके लिये हमेशा जामनकी आवश्यकता है, उसी तरह आसवमें ख़मीर उठानेके लिये 'किण्व' या आसवका बीज नहीं डाला जाता। मटकेका मुँह बन्द रखने मात्रसे इतनी गर्मी हो जाती है कि स्वयमेव आसव तय्यार हो जाता है।" आगे चलकर ७८ पृष्ठपर आप फिर दोहराते हैं। "खुला मुँह रखकर बनानेसे ही आसव बिगड़ता है क्योंकि आसवके कीटाणु हवामें कमज़ोर रहते हैं। वे हवाके अभावमें अपना काम ठीक करते हैं। मटकेका मुँह खुला रखनेसे बाह्य भूरे रंगके मच्छर बनते हुवे आसवको बार-बार अपने अम्ल स्पर्शद्वारा खराब कर देते हैं।"

आसव सन्धान पर क्रियात्मक विचार।

पीछे आसव सन्धान पर शास्त्रोंका अभिमत प्रकट कर चुका

हूँ। अब रहा इन नव्य लेखकोंका मत, उसपर क्रमसे विचार करूँगा और बताऊँगा कि आसव निर्म्माणके लिये कौन सा मार्ग प्रशस्त है।

पात्र किस चीज़का बना होना चाहिये ?

पूर्वकालमें न तो चीनीके वर्तन थे न लकड़ीके ढोल। मिट्टीके ही पात्र बनते थे और मिलते थे। उस प्राचीनकालमें कांचके पात्र (शीशियाँ) भी न थे। इसीलिये उस समयके लिये तो यह प्रश्न ही नहीं उठता था कि पात्र किस चीजका हो। एक दो स्थानपर स्वर्ण, आयस पात्रका उल्लेख आया है, किन्तु क्या स्वर्णपात्रमें सब वना सकते थे ? आयस पात्रका भी उस समय प्रचलन न था। इसलिये १०० आसवोंमें से ९८ आसवके निर्माणकी विधिमें मृत्पात्रका उल्लेख आया है। मृत्पात्रमें क्या दोष था ? मृतपात्रमें सबसे बहुत बड़ा दोष यह था कि मिट्टीके पात्र प्रायः मसामदार रहते हैं। कोरे मिट्टीके घड़ेमें यदि जल भर दिया जाय तो जल घड़ेके बाहर तक पहुँच जाता है। और वह दो चार दिन भी उसमें पड़ा रहे तो कुछ न कुछ अवश्य कम होता रहता है। इसीलिये शास्त्रकारोंने घीसे चुपड़ा हुआ नहीं प्रत्युत घीसे रसा या रमा हुआ पात्र लेनेका आदेश किया है। जो व्यक्ति घीके चुपड़ेका आदेश करते हैं या जो ग्रन्थकार ऐसा लिखते हैं वह भूल पर हैं। घी या तेलके चुपड़ देनेसे घड़ेकी जल शोषण शक्ति नहीं घटती। वही आज्य भाण्डके उपयोगसे ही इच्छित पूर्ति हो सकती है और प्राचीन समयमें बने हुवे आसवको आज्य परिप्लुत पात्रमें ही रखते थे। आज्य परिप्लुत पात्र हर दृष्टिसे अच्छा रहता है। किन्तु ऐसे पात्रको लेते समय

सन्धानसे पूर्व उस पात्रको अग्नि पर या धूपमें रखकर खूब गरम कर लेना चाहिये और उसकी जो स्निग्धता निकले उसे पोंछ डालना चाहिये, वरना आसव सन्धान कभी ठीक नहीं हो सकता। यदि सन्धान द्रव पर स्नेहकी तह आ जायगी तो सन्धान प्रक्रिया या तो रुक जायगी या बहुत धीरे-धीरे होगी। इस रहस्यको आगे चलकर किसी और स्थान पर बतलाऊँगा।

अब आइये नये युगमें—जहां कि आपको बड़ेसे बड़े कांचके पात्र, चीनेके पात्र तथा लकड़ीके ढोल और सीमेण्टके हौज़ बने बनाये मिल सकते हैं। ऐसे समय क्या हमें उसी रूढ़ीका भक्त बना रहना चाहिये या कि किसी उपयोगी अन्य पात्रको भी लेना चाहिये ?

पात्रोंके सम्बन्धमें विचारणीय बातें।

हम यदि सूखी वस्तु लेते तो शायद किसी तरहका पात्र ले लेते, उसमें विचारनेकी कोई आवश्यकता न थी, किन्तु हम एक द्रव पदार्थके लिये पात्र ले रहे हैं, उसमें हमें तीन बातें देखनी जरूरी हैं।

(१) पात्र इस द्रवको तो न पी जायगा ? या पात्रसे द्रव रसकर तो नहीं निकल जायगा ?

(२) पात्र उत्तापवाहक तो नहीं ? यदि पात्र उत्ताप-वाहक हो तो सन्धानार्थ द्रवका उत्ताप कभी एकसा नहीं रह सकता।

(३) पात्र ऐसा तो नहीं जिसका कुछ भाग उस द्रवमें घुल-कर मिल सकता हो ? यदि पात्रका भाग द्रवमें घुलकर आता रहे तो वास्तवमें उस द्रवके गुणोंमें अन्तर आ भी सकता है और नहीं भी।

हम उक्त तीन बातोंपर विचार करें तो मिट्टीका पात्र इन सबोंमें निकृष्ट सिद्ध होगा। पहिली बात तो यह कि मिट्टीके

पात्र मसामदार होते हैं। यदि उनको घृतसे परिप्लुत करके आसव बनाया जाय या पुराना आज्यपात्र लिया जाय तो उस आज्यकी गन्ध आसवमें आ जाती है। दूसरे उसके मसाम आज्यसे बिलकुल बन्द नहीं होते। तीसरे मिट्टी-चीनी, काँच, लकड़ी आदि पात्रोंको अपेक्षा अधिक उत्तापवाहक है। मिट्टीका पात्र सन्धानार्थ क्यों दबाते थे? इसकी तहमें यह रहस्य था कि यदि मृतपात्रको धान्यराशि या भूमिमें दबाया न जाय तो उस पात्रका उत्ताप कभी एकसी स्थितिमें नहीं रह सकता। जितना उत्ताप अन्दर से जनन होगा वह घड़ा उत्तापका वहन करता रहेगा और हवाके स्पर्शसे वह उत्ताप हवामें जाता रहेगा। इसलिये पात्र ठण्ढा होता चला जायगा। क्रियात्मक आयुर्वेदका कर्त्ता अपनी उक्त पुस्तकके ७६ पृष्ठ पर लिखता है—"आसवमें जब ख़मीर उठता है तो तापकी उत्पत्ति होती है, तापसे गतिकी उत्पत्ति होती है।"

किन्तु इसके पूर्व ५७ पृष्ठ पर "मटकेका मुँह कपड़मिट्टीसे बन्दकरके एक साधारण कोठरीमें बन्दकर देना चाहिये। गर्मीमें हवा आनेका प्रबन्ध रहे तथा सर्दीमें कोठरीका दरवाज़ा बन्द रहे।" यह लिखा है। सब जानते हैं कि मिट्टीके पात्रका जल सख्तसे सख्त गर्मियोंमें भी ठण्ढा रहता है और सर्दियोंमें तो बन्द कोठरीमें भी इतना ठण्ढा हो जाता है कि हाथ लगानेसे हाथ ठिठुरने लगता है। जिस पात्रमें बाहर रखने पर गर्मी २४ घण्टे एकसी स्थिर न रह सके वह सदा गर्मी फेंकता रहे तो यह कभी सम्भव है कि उसमें ख़मीर उठ सकैगा?

पाठकों! इस क्रियात्मक आयुर्वेदकी जरा परीक्षा तो कीजिये। गर्मीमें बाहर रक्खे पात्रमें सन्धान तो हो भी सकता है

पर सर्दियोंमें तो चार मासमें भी ख़मीर नहीं उठ सकता। मिट्टीके पात्रमें आसव बनाते समय इस दोषसे बचनेका उपाय यही है कि अन्न, अन्नतुष आदि तापरोधक वस्तुओंमें उक्त पात्रको दबादें।

चीनीका पात्र—हाँ, चीनीका पात्र ताप रोधक है और सबसे अच्छा तापरोधक है। इसमें यदि आसव बनाया जाय और कोठरीमें या बाहर कहीं भी इस वर्त्तनको रख दिया जाय तो ऐसी स्थितिमें आसव-सन्धान द्रवका न तो उत्ताप ही बाहर जा सकता है, न द्रव ही चू सकता है। क्योंकि यह मिट्टी जैसा मसामदार नहीं है।

कांचका पात्र—काँचका पात्र भी मसामदार नहीं होता किन्तु साधारण ताप वाहक है। इसमें भी आसव मिट्टीके पात्रसे अच्छा बन सकता है। किन्तु चीनी और कांचके पात्र बीस २ तीस-तीस सेर जिसमें पानी आजाय ऐसेही मिलते हैं। वैद्य लोग इसमें बना सकते हैं किन्तु फार्मेसियोंमें जहाँ बीस-बीस तीस-तीस मन आसव एक बारगी डाले जाते हैं वहाँ यह काम नहीं देसकते।

लकड़ीके पात्र—इसीलिये लकड़ीके पात्र बड़े-बड़े ढोल जिसमें एक बारगी ही दस-दस बीस-बीस मन आसव डाला जा सकता है प्रयोगमें लाये जाते हैं। क्या वास्तवमें लकड़ीके ढोल निकृष्ट होते हैं?

पाठक यह तो अच्छी तरहसे जानते हैं कि समस्त वृक्षोंकी लकड़ियां एकसी आकृति गुण स्वभाव नहीं रखतीं। कई लकड़ियां तो पानीमें डालने पर जल्दी ही सड़, गल जाती हैं, जैसे—देवदारु, पड़तल आदि। कई लकड़ियां इतनी पायेदार व दृढ़ होती हैं कि वर्षों जलमें पड़ी रहें तो उनका कुछ नहीं बिगड़ता, जैसे शीशम, शाल (सागवान), अर्जुन आदि।

समुद्रका जल अत्यन्त खारी होता है। उसमें अन्य जलकी अपेक्षा लकड़ी जल्दी सड़-गलकर खराब हो जाती है; पर सागवान, अर्जुन इतने दृढ़शाली काष्ट हैं कि जिनकी नौकायें सैकड़ों वर्ष पानीमें पड़ी रहने पर भी नहीं सड़तीं। उसी साग-वानके लकड़ीके बड़े बड़े ढोल बनते हैं। उन्हीं में झंडू फार्मेक्युटि-कलवर्क्स, वम्बई तथा अलेम्बिक वर्क्स जैसी बढ़ी-बड़ी फैक्टरियाँ और हमारे यहाँ भी इन्हींमें आसवोंका सन्धान होता है और इन्हींमें भर भर कर रखे जाते हैं। यदि इस तरह यह गलने, सड़ने लगते और इनसे ढोलासव तय्यार होने लगते तो बस, इन फैक्टरियोंके कार्यकर्त्ताओंको कौन बुद्धिमान् कहता ?

यहाँ पर एक बात और विज्ञानसम्मत बतला देना चाहता हूँ। वह यह है कि लकड़ियोंका जो काष्ठ-अंश होता है वह जितना अधिक ठोस सागवानमें होता है इतना अन्यमें नहीं। काष्ठ-अंश (Celuleus) ऐसी चीज़ है जिसको जलमें या हलाहलमें डाल देने पर और वर्षों पड़ा रहने पर भी वह उसमें नहीं घुलता। इसके इस अंशमें रसायनिक परिवर्त्तन भी ऐसी हालतमें बहुत कम आता है। इसीलिये यह लकड़ी जल्दी सड़ती गलती नहीं। पर विचारे आयुर्वेदालंकारजीको इस सम्बन्धमें क्रियात्मक ज्ञानतो दूर रहा सैद्धान्तिक ज्ञानभी नहीं है। परन्तु, प्रतिस्पर्द्धा जो हुई। छिद्रान्वेषग कर और लोगोंको इस तरह धोखा न दें तो पूछे कौन ? वह भी पुस्तक लिखकर नाम पैदा करना चाहते हैं। लकड़ीके ढोलोंमें यह बड़ी खूबी है कि वह अच्छे उत्ताप रोधक हैं। एक बार जो उत्ताप ख़मीर उठनेके समय उत्पन्न हो जाय वह घटता नहीं, प्रत्युत खुलापात्र भी पड़ा रहे तो भी उत्तापकी मात्रा यथावत बनी रहती है। दूसरे यह उसमें भी नहीं। सागवान लकड़ीके

ढोलोंमें वह समस्त अच्छे पात्रके गुण विद्यमान हैं जो आसव निर्म्माणार्थ आवश्यक हैं।

क्या आसव निर्माणार्थ पात्रका मुख बन्द करना आवश्यक है ?

हम पीछे शास्त्रकारोंका अभिमत इसके सम्बन्धमें प्रकटकर चुके हैं कि न तो वह पात्रका मुख बन्द करनेका ही पूरे जोरसे आदेश करते हैं न वह खुला रखनेका ही निषेध करते हैं। यदि निषेधात्मक बात भी पाई जाती तब भी विश्वासके लिये काफी स्थान होता कि पात्रका मुँह खुला रखनेके वह विरोधी हैं, किन्तु यह बात नहीं है। हम देखते हैं कि केवल एक दो ग्रन्थकारों ने ही—सब आसवोंमें नहीं—केवल दो तीन आसवोंकी प्रक्रियाके साथ मुँह बन्दकरना बतलाया है जिसे कोई अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता।

रहे आधुनिक ग्रन्थकार व लेखक जो बड़े ज़ोरके साथ पात्रका मुख बन्द करनेका आदेश करते हैं—यहाँ तक कि पात्रमें कहीं ज़रासा छिद्र भी रहनेके विरोधी हैं—उनकी रायमें पात्रका ज़रा भी मुँह खुला रहे तो आसवके खराब हो जानेका भय है। उनके इस विचारकी छानबीन करनी है कि इस कथनमें कोई सत्यता है ? याकि उन्होंने अन्ध परम्पराकी अन्धेरी गढ़य्यामें गोता मारा है। हम जब कोई चीज़ बनाने लगते हैं तो उसके निर्म्माणार्थ हमे तीन स्थानोंसे सहयता मिलती है।

(१) प्राचीन ग्रन्थोंसे जिन्होंने सबसे प्रथम उस चीज़को बनाया था।

(२) शिक्षक या गुरूसे जो बनानेकी विधि हमें सिखाता है।

(३) अन्योंको बनाता देखकर।

जैसा ऊपर बतलाया गया है, प्राचीन ग्रन्थ न तो पात्रका मुँह बन्द करनेका आदेश करते हैं, न खुला रखनेका। किन्तु प्राचीन गुरुओंने अपने शिष्योंको क्या बतलाया था। इसका पता किसी लेखसे तो लगता नहीं। रहे आधुनिक गुरु व ग्रन्थ लेखक, उनकी सम्मतिमें तो मुख बन्द करना ही चाहिये। तीसरे रहे अन्य बनानेवाले, इसमें केवल वैद्य ही नहीं है प्रत्युत जितने भी सुरा निर्माण करनेवाले हैं, उन सबको प्रथम आसव निर्माण प्रक्रियावत् ही सुरा सन्धान करना, या खमीर उठाना पड़ता है। इनमें बड़ीसे बड़ी फैक्टरीवाले और छोटे-छोटे कलवार जिनका व्यवसाय ही सुरा प्रस्तुत करना है आ जाते हैं।

ये लोग किस प्रकार आसव या सुराका निर्माण करते हैं? क्या इन लोगोंके पात्र खुले होते हैं या बन्द? इसको भी देखना है। आप किसी कलवारकी सुरा निर्माणालयमें चले जाइये। वहाँ आप देखेंगे कि उनके मटके जमीनमें गड़े होते हैं। उसमें वह मीठा (गुड़, महुआके फूल आदि) डालकर, शीतकाल हो तो गरम पानी और उष्णकाल हो तो ठण्ढा पानी डालकर उसमें कुछ लाहन मिला अच्छी तरह घोलकर इसी तरह उसे खुला छोड़ देते हैं या ढकना कुछ उठा हुआ ढँक देते हैं ताकि उसमें हवा आ जा सके। वह उसके उठनेकी प्रक्रिया बीच-बीच में देखते भी रहते हैं। जब सन्धान बन्द होनेपर आता है उसे परिश्रुत कर लेते हैं।

बड़ी-बड़ी सुरा निर्माण करनेवाली फैक्टरियोंमें तो सुरा सन्धानार्थ भिन्न ही एक जालीदार कोठरी होती है जिसमें मच्छर, मक्खी न जा सकें। वहाँ बड़े-बड़े ढोल या हौज बने होते हैं जिनमें सुरा सन्धानार्थ मीठा, फल व जल आदिका घोल भरा

रहता है और उनके मुँह काफी खुले रहते हैं। वह उसे बीच-बीचमें हिलाते भी रहते हैं और जैसे-जैसे मीठा सुरामें या आसवमें परिणत होता चला जाता है वैसे-वैसे आवश्यकतानुसार और मीठा डालते रहते हैं। जब उस द्रवमें हलाहलकी मात्रा इतनी हो जाती है कि फिर किण्व कीटाणुओंका जीवन व्यापार बन्द हो जाता है तथा आगे और हलाहल बननेकी सम्भावना नहीं रहती तो उसे परिश्रुतवाले पात्रोंमें नलों द्वारा निकाल देते हैं तथा नया घान और डाल देते हैं।

झंडू और अलेम्बिक वर्क्स जो भारी मात्रामें द्राक्षासव, दशमूलारिष्ट आदि बनाते हैं, वे सब भी इसी प्रक्रियासे वर्तन (ढोलोंका = जिनका मुँह तीन-तीन चार-चार फिट होता है) खुला रखते हैं।

इस तरह आधुनिक वैद्यों और आसव निर्माण करनेवाले कलाकारोंकी इस प्रक्रियाका मिलान किया जाय तो दोनों एक दूसरेके विरुद्ध जा रहे हैं—ऐसा स्पष्ट है। इनमें कौन ठीक है? कौन गलती पर है? इसका निर्णय कैसे हो? इसका क्रियात्मक सही उत्तर कहाँसे मिल सकता है? यह हम पाठकोंको बतलावेंगे। यह तो पाठकोंसे छिपा नहीं, कि आधुनिक विज्ञान प्रणालीसे ऐसा कोई विषय अछूता नहीं जिसपर उसने क्रियात्मक रूपसे प्रकाश डाला न हो।

यह आधुनिक विज्ञानका ही प्रताप है कि जिसने सुरा निर्माण पद्धतिको इतना ऊँचा उठाया है कि आसव, सुरा, हली, हलाहलके उत्तम व निश्चित बनानेके ऐसे अच्छे विधान आविष्कृत कर लिये हैं जिनसे कितने ही तरहके दिन-रात आसव बनते रहते हैं। उन्होंने इन विशुद्ध आसवोंकी बदौलत चिकित्सा

शास्त्रमें औषधियोंके ऐसे-ऐसे सूक्ष्म सार निकाल लिये हैं जो और किसी तरह सम्भव न थे। यदि वह विशुद्ध आसव निर्म्माणमें उन्नति न कर पाते तो आज एलोपैथी चिकित्साका जो विकसित रूप आपके सामने है दिखाई देता है, नजर न आता। यह सब उस आसव निर्माण प्रक्रियाको क्रियात्मक रूपमें ही जाननेका परिणाम है कि घर-घरमें उनकी औषधियोंका भण्डार भरा दिखाई देता है। और फ़िर विज्ञान सम्मत वात प्रत्यक्ष प्रयोगकी ऐसी खरी कसौटीपर कसी होती है जिसका खण्डन कोई अन्य प्रमाण द्वारा नहीं कर सकता।

यह विज्ञान आसव-निर्म्माण-प्रक्रिया पर क्या राय रखता है? इसकी विस्तृत चर्चा करेंगे।

आसव कैसे वनता है? और क्यों वनता है?

यद्यपि हम हज़ारों वर्षोंसे आसव निर्म्माण करते चले आये हैं फिर भी हम इस प्राचीन प्रथाको कभी छोड़ चुके हों या हमने इसका परम्परा क्रमसे उपयोग न किया हो, ऐसा नहीं दिखाई देता।

आसव निर्माण वैद्यकका एक उपयोगी और आवश्यक अंग रहा है। प्राय: प्राचीन समयसे लेकर आजतक हरएक वैद्य इसका निर्माण व उपयोग जानता है। आश्चर्य है कि इतने लम्बे क्रियात्मक ज्ञानके बने रहनेपर भी आसव क्यों वनता है? और कैसे वनता है? इसके वास्तविक रहस्यका आजतक वैद्योंको पता न लग सका। और हमें उसकी विशेष जानकारीके लिये आधुनिक विज्ञानका आश्रय लेना पड़ा, कितनी लज्जाकी वात है?

यह तो हम स्वभावत: देखते चले आते हैं कि दूधको इसी

तरह कुछ घंटे रक्खा रहने दिया जाय तो वह उसी रूपमें नहीं रहता। या तो वह जम जाता है, या फट जाता है। इसी तरह मीठे द्रव भी मीठे नहीं रहते, कोई कडुवे या चरपरे हो जाते हैं। कोई खट्टे पड़ जाते हैं या अन्य सड़ी गन्ध देने लग जाते हैं।

दूधमें या मीठे द्रवमें जब इस तरह विकृति आने लग जाय तो उसका रोकना कठिन होता है। मीठे द्रव या दूधको फिर उसे अपने असली रूपमें लाना सम्भव नहीं। इसमें कोई संशय नहीं कि हमने दूधको जमने और आसव बननेकी प्रक्रियाको होते प्राकृतिक रूपमें देखा और उसे देखकर ही हमने दही जमाने और आसव बनानेका कार्यारम्भ किया। हमें किसीने दही जमाना व आसव बनाना सिखाया नहीं। किन्तु, स्वतः दूध जमनेकी प्रक्रियाने धीरे-धीरे यह सिद्ध कर दिया कि यदि बिना जामन लगाये दूधको इसी तरह जमनेके लिये छोड़ या रख दिया जाय तो वह जम अवश्य जाता है तथापि प्रतिवार एक सा इच्छित दूध नहीं जमता। कभी अच्छा जम जाता है, तो कभी फट जाता है। कभी, रंग-विरंगा, नीला, हरा आदि हो जाता है। इस तरहका जमा हुआ दूध किसीका स्वाद-रुचिकर होता है तो किसीका अरुचिकर।

किन्तु, जब उन्होंने देखा कि अच्छे दहीका जामन दूधमें दे दिया जाय तो दही अच्छा जमता है। जिस तरहका जामन दें उसी तरहका दूधसे दही बन जाता है। उन्होंने स्वभावतः दही बननेके इस रहस्यको समझ कर इच्छित दही बनानेके अर्थ इस प्रक्रियाको प्रकृति पर न छोड़ कर स्वयं अपने हाथमें ले लिया।

जबसे मनुष्य दही जमाने लगा, कोई खास त्रुटि न रह गई हो तो उसे इच्छित दही मिलने लगा। जिन त्रुटियोंसे दहीका स्वाद

या वर्ण खराब हो जाता था, धीरे-धीरे पता लग गया और फिर वह सावधानीसे काम लेने लगा। इसीलिये आज शहरोंका दही कितना उत्तम होता है ? यह पाठकोंसे छिपा नहीं। ठीक, सोलहो आने यही बात आसव पर लागू है। आसव प्रकृतिमें भी बन जाता है, पर सौ में सौ प्रतिशत ठीक नहीं बनता। प्रत्युत प्रकृतिरूपमें रखे हुवे आसव सौमेंसे ५० भी ठीक नहीं बनते।

यह शिकायत आजतक वैद्योंके मुँह पर है। और सम्मेलनों तकमें भी इसके बिगड़नेकी चर्चा चलती रही है। वैद्योंके सौ आसवोंमेंसे पचास तो खट्टे हो ही जाते हैं। कई आसव रहित अन्यरूपके द्रव हो जाते हैं; जिनमें आसवके स्वाद-गन्धका नाम निशान तक नहीं होता। ये सब त्रुटियाँ आसव-निर्माण-प्रक्रियाको स्वतः होने देनेके कारण ही आती रहती हैं, और कोई कारण नहीं। इसमें कोई भी संशय नहीं कि किसी-किसी वैद्यने इस त्रुटिको मालूम कर लिया था और उसने दूधमें दहीके जामनवत् आसवका जामन लगा कर देखा, जिसमें उसे पूरी-पूरी सफलता भी मिली होगी। जभी तो उसने यह निश्चय किया कि दधि बीजवत् सुरा बीज भी है। उसने ही सुरा बीजका नाम 'किएव' दिया।

यह स्पष्ट है कि सजातीयसे सजातीयकी उत्पत्ति देखी जाती है। बट बीजसे बट और मनुष्य बीजसे मनुष्य उत्पन्न होता है, दधि बीज (जामन) से दधि। इसी तरह सुराबीजसे सुरा ही उत्पन्न होगी यह निश्चित बात है। जभी तो यह बात निश्चित रूपसे मालूम होनेपर ही उन्होंने इसका नाम "सुराबीजं च किण्वकम्" रखा।

यही नहीं, वृद्ध शौनिकके कर्ताने तो सुरा-निर्माण प्रक्रियामें भी स्पष्ट लिख दिया है कि—

"दिनादि कतिचित् किण्वं गुडादौ स्थापयेद्भिषक्" ।

इस पाठमें भिषक्से सम्बोधन करते हुये कहा गया है कि गुड़ आदि द्रव्य व जल तथा किण्व इन सबको मिलाकर कुछ दिन सन्धानार्थ रक्खै, यह सम्बोधन किसी शराब खींचने वालेके प्रति नहीं किया गया।

अब कहिये ! क्या संशय रह गया ? यदि फिर भी आयुर्वेदाचार्य और आयुर्वेदालंकार होकर न समझें तो फिर उन्हें हम ही क्या ब्रह्मा भी समझाने आवेंगे तो भी वह न समझेंगे ।

खैर ! हम जहाँ तक समझते हैं कि शास्त्रकारोंने जैसे अन्य बातें संकेतमें या सूत्ररूपमें रख दी हैं उसी तरह इसे भी "सुराबीजं च किण्वकम्" के सूत्रमें गुम्फितकर आयुर्वेदाचार्यों और आयुर्वेदालंकारोंकी विचक्षण बुद्धिका परिचय लेनेके लिये इसी रूपमें छोड़ दिया । यह बहुत अच्छा किया ।

यद्यपि आसव क्यों बनते हैं ? और कैसे बनते हैं ? इस तालेकी कुंजी सुराबीज है, यह शास्त्रकारोंने बतला दिया। तथापि, आधुनिक विज्ञानने इसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों तक पहुँचकर जबतक उसकी व्याख्या नहीं की तबतक हम वहीं बने रहें, जहाँ आजसे कई सहस्र वर्ष पूर्व थे ।

सुराबीज या किण्व क्या वस्तु है ?

जब तक 'जैव-वाद' (जीवाणु, कीटाणु-वाद) का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय तक किसी भी ग्रन्थकारने यह सिद्ध नहीं किया था कि दधि-बीज और सुराबीज भी कीटाणु या सजीव

प्राणी है। बीज कहनेसे अवश्य वृक्ष बीजवत् कोई विवर्द्धन शील वस्तु है ऐसा इस शब्द रचनासे संकेत मिलता था; किन्तु वह इसे सजीव मानते थे ? इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता। प्रत्युत जब वृक्षों, वनस्पतियोंको जिन्हे वह आंखोंसे जल-रस चूसता, बढ़ता, फलता-फूलता तथा सन्तति उत्पन्न करता देखते थे; उन्हें जब जड़ मानते थे तो दधि-बीज और सुरा-बीजको चैतन्य मानना बहुत दूरकी बात थी।

सूक्ष्मदर्शक यन्त्रका जबसे आविष्कार हुआ और इसकी सहायतासे जैव विज्ञानपर जबसे विशेष अनुसन्धान होने लगे तबसे ही ऐसे सूक्ष्म जीवोंका पता चला जिन्हें आँखें किसी तरह भी नहीं देख सकती थीं।

इन्हीं जैव विद्या-विशारदोंने दधि और सुरा-बीजका जब सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे निरीक्षण किया तो उन्हें पता लगा कि यह दोनों ही भिन्न-भिन्न जातिके सजीव प्राणी हैं, जो एक दूधपर और दूसरे मीठे द्रवपर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यह इतने सूक्ष्म हैं कि एक बूँद किण्वमें इनकी संख्या हजारों होती हैं।

जब इनके जीवन व्यापारको देखा गया तो पता लगा कि दधिके कीटाणु दूधके एक भागपर अपना जीवन निर्वाह करते हैं, इनके जीवन निर्वाह व वृद्धिसे ही दूधके उस भागमें परिवर्तन आता है और वह दूधसे जमकर दहीमें परिवर्तित होता चला जाता है। इसी तरह सुरा-बीज चाहे फलका मीठा हो या अन्न-का; या इक्षुका हो या शहदका; मीठेके कणोंको यह खाते हैं और खानेके समय ही हवाकी विद्यमानतामें उसे आसवके कणमें बदलते रहते हैं। अथवा यों कहिये कि उनके खानेकी प्रक्रियामें यह रसायनिक परिवर्तन होता रहता है और इसी रसायनिक

परिवर्तनके कारण उस द्रवमें उत्तापका संजनन होता है। इस परिवर्तनमें खांड़के अणु आसवके अणुओंमें किस तरह परिवर्तित होते हैं? रसायन शास्त्रियोंने इसका अच्छी तरह अध्ययन किया है। उसको इसलिये विस्तारके साथ बताना आवश्यक हो गया कि क्रियात्मक आयुर्वेदके ठेकेदार तथा आचार्य इस बातको आँखै खोलकर देख लें कि किण्व डालना क्यों ज़रूरी है।

सुराबीज या किण्व एक सजीव प्राणी है।

जिनको हम सबीज प्राणीके नामसे पुकारते हैं, उन्हें सजीव कहते ही इस बातका बोध हो जाता है कि उनमें जीवनार्थ (१) संग्रहण (२) सात्म्यीकरण (३) सम्वर्द्धन (४) गतिकरण (५) संजनन और (६) संरक्षण, यह षट् प्रक्रियायें होती हैं। अर्थात्—

संग्रहण—भोजनको बाहरसे अपने अन्दर कर लेना।

सात्म्यीकरण—उस खाद्यको अपने शरीरके रूपमें मिला लेना।

सम्वर्द्धन—खाद्यको सात्म्यरूप करके भीतरसे बढ़ना।

गतिकरण—इच्छानुसार हिलना, चलना।

संजनन—और अपने जैसे ही सन्तान उत्पन्न करना।

संरक्षण—परिस्थिति, प्रभाव तथा अन्य सजीव शत्रुओंसे अपनेको भीतर बाहरसे बचाना।

जिनमें ये छः बातें पाई जायँ उन्हें सजीव माना जाता है।

आश्चर्य तो यह है कि ये सुराबीज इतने सूक्ष्म हैं कि सूईकी नोकपर पचासोंकी संख्यामें अच्छी तरह बिठाये जा सकते हैं। देखा गया कि ये समस्त जैव उसी तरह जीवनका सारा कार्य सम्पादन करते हैं, जैसे मनुष्य या अन्य बड़े प्राणी।

क्रियात्मक आयुर्वेदका लेखक किएव या आसवके कृमि तो मानता है और आसवके पात्रको बन्द करनेके विधानमें अपनी पुस्तिकाके पृष्ठ ५४ पर लिखता है—"जिस तरह शरीरमें श्वेताणु, रक्ताणु स्वास्थ्य निर्माणमें यत्नशील रहते हैं उसी तरह आसव निर्माणके कृमि आसवमें विद्यमान होते हैं। आसवके कृमि वायुको उत्तमतया बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे उसके (वायुके) अभावमें खमीरमें ही उत्पन्न होकर अपना कार्य अच्छी तरह सम्पादन करते हैं।"

कृमि—"वायुको उत्तमतया बर्दाश्त नहीं कर सकते" यह आयुर्वेदालंकारजीने किस प्रकार मालूम किया? कौनसी ऐसी प्रक्रिया गुरुकुलसे हासिल की, जिसकी कृपासे आपको उक्त बात-का पता लगा, कृपया बतलावें तो सही।

आयुर्वेदालंकारजीको इतना तक पता नहीं कि खमीर (Fermentation) क्या चीज़ है और क्यों उठता है? आपने खमीर एक भिन्न चीज समझा है। जभी तो आप कहते हैं वे (कृमि) उसके (वायुके) अभावमें खमीरमें ही उत्पन्न होकर अपना काम अच्छी तरह सम्पादन करते हैं।

आयुर्वेदालंकारजी! पुस्तक लिखने बैठे थे और खमीर क्या है? इसका पता न था, तो किसीसे पूछ ही लेते। सन्धान या खमीर कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसमें किण्व-किटाणु उत्पन्न हो सकते हों। प्रत्युत खमीर उठता ही तब है, जब किएव-कीटाणु उक्त घोलमें अपनी जीवन क्रिया सम्पादन कर रहे हों। इनके जीवन क्रिया सम्पादनसे ही खांड़के अणु टूटकर आसवके अणु बनते हैं और कज्जल द्विऊष्मिद वायु जनन होता है तथा इस रद्दोबदलमें ही उत्ताप उत्पन्न होता है और इस रासायनिक परिवर्तनमें जो हलचल मची

होती है उसका नाम है खमीर उठना या सन्धान (Fermentation). आसवमें किण्व-कीटाणुओं द्वारा खमीर उठता है न कि खमीरमें किण्व-कीटाणु उत्पन्न होते हैं।

इस समयके अनुसन्धानोंने सिद्ध कर दिया है कि जिस तरह अनेक प्रकारके पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े पृथ्वी पर व्याप्त हो रहे हैं और इन जीवोंसे पृथ्वीका बहुतसा अंश-परिपूरित हो रहा है, ठीक इसी प्रकार जहाँ पर अन्य दृश्य जगत्के जीव पाये जाते हैं वहीं अदृश्य जगत्के ऐसे जीव भी भारी संख्यामें पाये जाते हैं जिन्हें हम अपनी इन नंगी आँखोंसे नहीं देख सकते।

जिस तरह दृश्य जगत्के प्राणी कोई घास खाते हैं, तो कोई मांस, कोई फल पत्र, तो कोई बीज, काष्ठ, अन्न आदि। इसी तरह इन अदृश्य जगत्के जीवोंकी भी हालत है। कोई पशुओंके मल-मूत्रमें गुजारा करते हैं तो कोई गन्दी नालियोंमें; कोई मांस, चमड़ा या मृत-प्राणियों पर गुजारा करते हैं। कोई जीते प्राणियोंके शरीर पर गुजारा करते हैं; कोई दूध पर जीवन निर्वाह करते हैं, तो कोई मीठे द्रव पर।

फिर यह जीव जहाँ नहीं होते—मच्छर, मक्खी, धूल-कण, जल-कण, हवा द्वारा उड़े हुवे अनेकों पदार्थों द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। जिस तरह हम सब या पशु-पक्षी भोजनकी तलाशमें न जाने कौन-कौन से देशों, विकट स्थानोंमें पहुँच जाते हैं, इसी प्रकार ये भी भोजनकी तलाशमें दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं और जहाँ पर इन्हें अनुकूल भोजन जब तक मिलता है, परिस्थिति अनुकूल रहती है, वहाँ खूब खाते पीते हुवे बढ़ते हैं

और थोड़े समयमें ही उक्त स्थान या वस्तुमें बढ़कर इतने हो जाते हैं कि उक्त वस्तु कीटाणुमय हो जाती है।

परीक्षाओंसे देखा गया है कि दूध और मीठामें पलनेवाले आठ-आठ दस-दस प्रकारके कीटाणु हैं। जितने भी दूधमें पलने-वाले कीटाणु हैं सबके सब ही एक प्रकारका दही नहीं बनाते। दो प्रकारके कीटाणुओंसे तो अच्छा दही जमता है, बाकीके कीटाणुओंके प्रवेशसे दूध ठीक दहीमें परिणत नहीं होता। किसी कीटाणुके कारण खराब प्रकारका दही जमता है तो किसीके कारण दूधके छिछड़े हो जाते हैं; किसीके कारण दूध नीला, हरा सा हो जाता है, तो कोई बुरी गन्ध देता है। ठीक इसी प्रकार किण्व-जातिके कीटाणुओंका हाल है। तीन जातिके किण्व-कीटाणुही मीठेसे हला-हल प्रस्तुत करते हैं। दो प्रकारके कीटाणुसे तो अच्छा गन्धयुक्त हलाहल बनता है और एकसे तीव्र गन्धवाला तथा मात्रामें भी कम बनता है। उन दो प्रकारके किण्व-कीटाणुमें एक द्राक्षीय कीटाणु ही सर्वोत्तम प्रिय सुगन्ध युक्त हलाहल निर्माण करता है। इनसे भिन्न अन्य मीठे द्रव पर जीवन निर्वाह करनेवाले कीटाणु हलाहल नहीं बनाते, प्रत्युत इससे भिन्न अन्य तरहकी ऐसी वस्तुएँ बनाते हैं जो उस द्रवमें विद्यमान् वस्तुके गुणको नष्ट कर डालते हैं तथा वह द्रव पेय योग्य नहीं होते।

यदि हम सुराबीज न डालें तो ?

हम यदि सन्धानार्थ रक्खे हुए आसव द्रवमें किण्व-बीज न डालें और आयुर्वेदाचार्य्यों तथा आयुर्वेदालंकारोंका कहना मानकर इसी तरह छोड़ दें तो यह आवश्यक नहीं कि उस द्रवमें सुरा बीज ही प्रवेश करें, [illegible] अच्छे बुरे

प्रत्येक प्रकारके कीटाणु फिरते रहते हैं। अथवा जो हमने पात्र लिया है उसमें घुसे हुवे हैं, या मीठे द्रव्य शहदके साथ आगये हैं अथवा जलमें थे, वह आसव डालते समय ही उस आसवके द्रव सम्मेलनमें उतर आये। अब, वे जैसे और जिस जातिके होंगे, उनसे वैसा ही उस आसवका द्रव बनने लगेगा। यदि ठीक किरव बीज ही उसमें पहुँच गये हैं तो आसव घोलमें ठीक परिवर्तन होकर उससे हलाहल बनता चला जायगा। यदि उसमें अन्य जातिके कीटाणु प्रवेश कर गये हैं तो उससे आसव न बनकर अन्य ही वस्तु बन जायगी जिसकी न तो आसव जैसी गन्ध होगी न स्वाद।

किन्तु सुराबीज डालनेमें यह बात नहीं होती।

यदि हम आसव द्रवमें इच्छित सुराबीज या किण्व डाल दें तो फिर वह आसव बिगड़ जायगा या अन्य कुछ बन जायगा इसका भय नहीं रहता। इसका क्या कारण? सुनिये! आप देखते हैं कि सौ बार दूधमें अच्छा दहीका जामन दे दें तो सौ बारही अच्छा दही बन जाता है, उसमें त्रुटि नहीं रहती। ठीक यही बात आसव पर लागू है।

यदि हम आसव बनाते समय अन्य आवश्यक वस्तुओंके साथ किण्व भी डाल दें तो हमें आसव बिगड़नेका कदापि भय नहीं रहता। इसका क्या कारण? प्रयोगोंसे देखा गया है कि दो भिन्न-भिन्न मीठे द्रवमें दो जातिके कीटाणुओंका एक साथ मिश्रण करके दोनोंमें डाल दिया जाय तो इस मिश्रणमें—जिसमें आसव जातिके कीटाणुओंकी संख्या अधिक रखी गई है, अर्थात्—किरव अधिक डाला गया है और दूसरी जातिके कीटाणु बीज बहुत थोड़े डाले गये हैं, ऐसे पात्रमें हलाहल ही बनेगा। दूसरे

पात्रमें किएव बहुत थोड़े और दूसरे जातिके किण्व बीज बहुत अधिक डाले गये हैं तो इसका परिणाम यह होता है कि उसमें हलाहल नहीं बनता। जिस पात्रमें किएव-कीटाणु अधिक थे उसमें ही हलाहल बना और जिसमें इससे अन्य जातिके कीटाणु अधिक थे वह हलाहल न बनकर अन्य द्रव बन गया। उन द्रवोंकी परीक्षाओंसे पता लगा कि जिस जातिके कीटाणु अधिक थे उन्होंने दूसरे जातिके कीटाणुओंको नष्ट कर डाला। दूसरे जातिके कीटाणुओंका उसमें नामोनिशान तक न रहा। एक ओर लाखों सैनिक हों और दूसरी ओर दो, चार, दस, बीस तो लाखोंका सामना वे कहाँ तक कर सकते हैं?

जब किएव छोड़ा जाता है तो उस किएवमें अपार किएव-कीटाणु होते हैं जो सारे द्रवमें फैलकर उसपर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। ऐसे समय यदि मीठे द्रवपर निर्वाह करनेवाले अन्य जातिके कीटाणु हों भी या कहींसे आ भी जायँ तो भी वे वहाँ उनकी विद्यमानतामें बढ़ने नहीं पाते। उन्हें वह किएव-कीटाणु नष्ट कर डालते हैं। इससे आसवके बिगड़नेकी सम्भावना नहीं रहती। दहीके जामन देनेमें भी यही बात होती है। यह दो काम करते हैं; एक तो आसवका निर्म्माण और दूसरे आसवका संरक्षण, ऐसी मुख्य और जरूरी वस्तुके डालनेकी उपेक्षा करके स्वतः निर्म्माणके लिये आसवको छोड़ देना महान् मूर्खता है।

क्रियात्मक आयुर्वेदका कर्त्ता पृष्ठ ६१ पर कहता है—"लेकिन आसव हमें खट्टे अभिप्रेत नहीं। वे मीठे तथा स्वादु होने चाहिये। इसलिये गुड, खाँड़, शहद डालकर उसे मीठा कर लेते हैं। फिर गुलधावा और खटाई डालकर आसवमें ख़मीर उठाते हैं। यह गुड़युक्त गुलधावा ही सुराबीज है।" हम क्रियात्मक आयुर्वेदके

कर्त्ताके कथनानुसार पाठकोंसे प्रार्थना करेंगे कि वह गुलधावा और खटाई डालकर आसव तय्यार करके क्रियात्मक आयुर्वेदका परिचय अवश्य लें। फिर आप ६५ पृष्ठपर लिखते हैं "प्रधानतः धातकी पुष्प ही इसका जामन हैं। प्रधानतःसे यह अभिप्राय नहीं कि ग्रन्थकर्त्ताको (क्रियात्मक आयुर्वेदके कर्त्ताको) अपनी इस स्थापनाके विषयमें कुछ सन्देह है ही नहीं, इसका सिर्फ यह मतलब है कि धातकी पुष्पके अतिरिक्त अन्य अम्लयुक्त कपित्थ, आमलकी, अम्लवेत वगैरह भी जामनका थोड़ा बहुत काम दे सकते हैं। कई प्रयोगोंमें वे सहायक जामनका काम भी करते हैं।" पाठकों ! आसव बनाते समय अवश्य खटाई डालना, परन्तु इससे आपको आसव तो नहीं प्रत्युत सिरका अवश्य मिल जायगा। क्योंकि यह जामन तो नहीं 'सहायक जामनका भी तो काम करते हैं।' शास्त्रमें तो सहायक जामनोंका कहीं पता भी नहीं चलता। मालूम होता है कि कहीं गंगाके पार आपको यह विधि किसी तपोधन महात्मासे मिली हो तो आश्चर्य नहीं।

पाठको ! यहाँपर एक मज़ेदार बात आपने और बतलाई है वह तो छूट ही गई। आप फ़र्माते हैं "गुड़युक्तधावा ही सुराबीज हैं" इसका नाम है बिना सूक्ष्मवीक्षण-यन्त्रके ज्ञान चक्षुओंसे देखना। मालूम होता है आप ऐसे-ऐसे सूक्ष्म क्रियात्मक आयुर्वेदके रहस्य कहीं गंगाके तटपर ही रहकर आविष्कार करते रहे होंगे। कई वैद्य कहेंगे कि अजी ! तीन वर्ष तो वे तुम्हारे यहाँ भी रहे हैं। वे हमारे यहाँ तो मैनेजरी करते रहे, न कि आसवनिर्माण।

तो क्या गुड़ और धातकी पुष्प सुराबीज नहीं ?

हम पीछे बतला चुके हैं कि सुराबीज एक प्रकारसे सजीव प्राणी है। [illegible] किण्वकटाणुओंका

खाद्य द्रव्य है। क्या कभी खाद्य भी खाद्यक बन सकता है? रहे धातकी पुष्प, ये अवश्य कुछ अंशमें सुराबीज या किण्वका काम करते हैं।

चम्बा, काश्मीर रियासतोंके हिम प्रान्तोंमें हमने देखा है कि वहाँ पहाड़ी अपने-अपने घरोंमें अन्नयुक्त गुड़से सुरा तैयार करते हैं। वह सुरा निर्माणकालमें सुराबीज तो नहीं डालते किन्तु सुपारी, नागकेसर, धातकी पुष्प तथा कुछ अन्य पहाड़ी कषायस्वादी कुछ वनस्पतियोंकी छाल व फूल एकत्र करके उनकी रोटियाँ बनाकर अपने-अपने घरोंमें रखते हैं। वह कषायपूर्ण वस्तुओंकी रोटियाँ उस गुड़-घोलमें मिला देते हैं। उससे दो चार दिनमें ही सन्धान उठ खड़ा होता है और वह सन्धानद्रव कुछ दिनमें जब तय्यार हो जाता है तो उसे परिश्रुत कर लेते हैं। परीक्षाओंसे देखा गया है कि कषायस्वादी वृक्षोंमें जैसे—बबूल, धावाफूल, सुपारी आदिमें सुराबीज या किण्वकीटाणुओंका निवास होता है। कपित्थ, आमला निम्बू आदिके अम्लमें दुग्धको जमानेवाले कीटाणुओंका निवास पाया जाता है। इसीलिए तो दधिको जमानेके अर्थशास्त्रकारोंने इन वृक्षोंके उपयोगका उल्लेख किया है न कि सुराका यथाः—

पक्वस्य चूर्णं सुकपित्थकस्य दुग्धेनभाव्यं महिषी भवेन।
शुष्कं क्षिपेत्तक्रयुते सभाण्डे तत्कालिकं स्याद्दधि निर्जलं वै॥
—गदनिग्रह।

कैथके पक्के फलोंके गूदेको भैंसके दूधकी भावना देकर सुखा लें। इसे छाछवाले पात्रमें—जिसमें दूध जमाना है—उस दूधके साथ—थोड़ा चूर्ण डालनेसे दूध जलरहित थक्कारूपमें जम जाता है। अथवा—

सतिन्तडीकैर्वदराम्ल दाडिमैः श्रेष्ठं तथैवं सरसं दधिस्यात्॥
—गदनिग्रह।

इसी तरह खट्टा समाकदाना या इमली, बेरफलकी खटाई या अनारकी खटाई, आदिको दधि जमानेके पात्रमें लेप करें या थोड़ासा डाल दें तो दूध जमकर उत्तम दही बन जाता है।

हम १९३२ में जब सत्याग्रह आन्दोलनके समय जेल गये तो वहाँ बिमार होनेपर दूध मिला करता था। किन्तु पेटकी बिमारीके कारण दूध अनुकूल न पड़ता था; दधि अनुकूल पड़ता था। वहाँ दधि जमानेका कोई साधन न था, जामन न मिलता था, इसी लिये हम आमके पत्तोंका डण्ठल या निम्बूके पत्तोंका डण्ठल या पत्ते तोड़कर डाल दिया करते थे। इससे बड़ा सुन्दर और मीठा दधि जम जाता था। यद्यपि यह असली दधिके स्वादसे कुछ अन्तर रखता था किन्तु फिर भी अच्छा, मीठा, स्वादयुक्त दधि जमता था।

अम्ल पदार्थ दधि जामनका काम दे सकते हैं अर्थात् उनमें दधि बीज या दधिके कीटाणु अवश्य होते हैं, किन्तु आसवके नहीं। यदि अम्ल आसव जामनका काम देते तो ग्रन्थोंमें इसका भी उल्लेख मिलना चाहिए था। जो व्यक्ति जानकर या अनजानमें क्रियात्मक आयुर्वेदके परामर्शानुसार अम्ल छोड़ते हैं वह आसव नहीं प्राप्त कर सकते। हाँ, आसवसे भिन्न ही अन्य नामधारी द्रव प्राप्त करेंगे, जिसको कुछ दिनमें देखेंगे कि वह द्रव सिरका या सिरका जैसे किसी अम्ल रूपवाला होगा।

धातकीपुष्पसे तो बबूलकी छाल अच्छी है। जितने भी सुरा प्रस्तुत करनेवाले हैं सब इसीका उपयोग करते हैं। संजीवनी सुरा निर्म्माणमें भी ग्रन्थकारने धातकी पुष्पके स्थानपर बबूलकी छाल और बेरकी छाल तथा सुपारीका उपयोग किया है। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि सुरा निर्माण करनेवाले बबूलकी छालको

किण्वके सहायक रूपमें डालते हैं। इस तरह तो उनका सुरा निर्म्माण पात्रही जामन रूप बना रहता है। यदि पात्र सदा आसव निर्म्माणमें प्रयुक्त होता रहे तो किण्व डालनेकी इतनी आवश्यकता नहीं रहती। किण्व कीटाणु तो उस पात्रमें ही इतने अधिक विद्यमान रहते हैं कि उनकी उपस्थितिमें अन्य कीटाणु वहाँ ठहर ही नहीं सकते।

मीठा कौनसा, कब-कब कितना डालना चाहिये ?

आसवकी उत्पत्ति मीठे पर निर्भर है। जिस द्रवमें मीठा न हो आसव बन नहीं सकता। मीठा चाहे फलोंका हो, या अन्नका (अन्नकी माँड़ी मीठेमें बदल जाती है) या वनस्पति रस, इक्षु आदिका सब मीठों पर किण्व कीटाणुओं द्वारा आसव निर्म्माण होता है। किन्तु, जिस मीठेमें अम्लता हो या कोई तेज़ाबका असर हो तो ऐसे मीठेसे भी आसव बन तो ठीक जाता है, किन्तु बिना परिश्रुत करके रखनेपर वह आसव जल्दी ही ख़राब हो जाता है, उसका स्वाद, गन्ध आदि सब बदल जाता है। हमारे यहाँकी प्राचीन पुस्तकोंमें आसव निर्माणार्थ गुड़का विधान अधिक आता है। प्राचीन समयकी स्थितिकी ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि जिस समय आसव निर्म्माण प्रथाका जन्म हुआ था गुड़का ही अधिक प्रचलन था। चीनी, खाँड़ जैसी स्वच्छ मीठाका निर्म्माण या तो हुआ ही नहीं था या किसी बिरलेको ही इसका ज्ञान होगा। इसीलिये उनके लिये सिवाय गुड़ डालनेके अन्य कोई चारा न था ?

इस समय जब कि हमारे सामने एक गुड़के या इक्षु रसके अनेक शुद्धसे शुद्ध मीठेके रूप मिलते हैं, ऐसी स्थितिमें गुड़को

ही क्यों महत्व दिया जाय ? यह किसी वैद्यने आजतक नहीं बताया। हम पीछे बतला चुके हैं कि किसी द्रवमें मीठा डालकर सन्धान करनेका मुख्य अभिप्राय है उसमें आसव या हलाहल उत्पन्न करना और उसकी समुचित मात्रा बढ़ाना। इस आसवके बननेका आधार मीठा है। मीठाके अणुओंको किरव-कीटाणु भक्षणकर आसवके अणु बनाते हैं। मीठा किसी भी चीजका हो चाहे महुआके फूलका हो या अंगूर या ईखके रसका हो या गुड़, खाँड़का वह तो मीठाके अणुओंको ही खाते रहेंगे। उनके लिये गुड़की मीठास ही ज्यादा पसन्द है, चीनी या खाँड़की नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। इसलिये चाहे चीनी या खाँड़ डाली जाय या गुड़—गुणकी दृष्टिसे कोई भिन्न महत्व नहीं रखते। गुणकी दृष्टिसे मीठा मात्र एक ही प्रकारके आसवके अणु निर्म्माण करते हैं। यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।

कई व्यक्ति कहेंगे कि द्राक्ष शर्करा, यव शर्करा, इक्षु शर्करा आदिका रसायनिक संगठन भिन्न-भिन्न है इसलिये इनके मिठासमें भिन्नता है। जब मिठासमें भिन्नता है तो इसी दृष्टिसे इनके बने आसवमें भी भिन्नता होनी चाहिये। किन्तु यह बात नहीं पाई जाती। चाहे किसी जातिकी शर्करा हो उसके अणुका सामान्यतः सूत्र $क_{६}$ $उ_{१२}$ $ऊ_{६}$ है।

गठन भिन्न-भिन्न होनेपर इनका स्वाद स्वभाव बदला हुआ होता है, किन्तु जब किरव-कीटाणु इन मिठासके अणुओंको तोड़ते हैं और उनको भक्षण करते हुए उसके अणुओंसे आसवके अणुओं-का निर्म्माण करते हैं तो वहाँ उनकी यह रसायनिक प्रक्रिया एक ही क्रमसे होती है। इसीलिए आसवके अणु कई प्रकारके न बनकर एक ही प्रकारके बनते हैं। जिन आसवोंके स्वाद, गन्ध

और तीक्ष्णतामें अन्तर होता है, वह किएव-कीटाणुओंकी जाति भिन्नता तथा उसके आसव निर्म्माण प्रक्रियासे ऐसा होता है, मीठेकी विभिन्नतासे नहीं।

मीठा कैसा होना चाहिये ?

किसी भी चीज़का मीठा हो उसको लेते समय निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिये। (१) मीठेमें कोई अम्ल तो नहीं ? (२) मीठेमें किसी प्रकारकी बुरी गन्ध तो नहीं ? (३) यदि किसी फल-रसका या इक्षु-रसका उपयोग करना है तो वह ज्यादा दिनका निकाला हुआ तो नहीं है ? (४) फल या इक्षु सड़ा गला हुआ तो नहीं है ? यदि इनमेंसे कोई भी त्रुटि होगी तो आसवके बिगड़नेकी सम्भावना है। यदि फलोंका रस ही मीठेके स्थान पर प्रयुक्त करना हो और उस रसके सम्बन्धमें यह संशय हो कि इसमें त्रुटि है तो उसे अच्छी तरह उबाल लेना चाहिये। और दूधके छींटे देकर उसकी मलिनता दूर करके उसे फिर सन्धानार्थ रखना चाहिये।

चीनी या खाँड़ स्वच्छ हो, इनमें कोई त्रुटि नहीं होती। शहद भी यदि अपनी असली हालतमें गाढ़ा हो तो वह नया पुराना कैसा भी डाला जा सकता है। शहद वही खट्टा हो जाता है जिसमें द्रवता अधिक है। कार्त्तिकी शहद प्रायः पतला होता है और यह अक्सर पड़े-पड़े खट्टा हो जाता है। ऐसा शहद आसवमें कभी न डालना चाहिये।

क्या गुड़ आसवके लिये अच्छा है ?

परीक्षाओंसे देखा गया है कि चाहे कितना ही अच्छेसे अच्छा गुड़ क्यों न ले लिया जाय, उसमें दो प्रकारके अम्ल विद्यमान

होते हैं। एक तो मुक्तस्फुरिकाम्ल (Free Phosphoric acid) और दूसरा मुक्तशर्करिकाम्ल (Saccharic Acid)। इसमें प्राय: मुक्तस्फुरिकाम्ल अधिक मिलता है। जिस समय गुड़को बिना पकाये आसव द्रवमें डाला जाता है उस समय यह मुक्त स्फुरिकाम्ल तो उसी समय द्रवके साथ चला जाता है। रहा शर्करिकाम्ल, यह खाँड़के अणुको द्राक्षोज और फलोजमें बदलता है। उस समय उस मीठाके अणुसे आसवके अणु बनते रहते हैं। उक्तस्फुरिकाम्ल आसवको खराब कर देता है। दूसरे गुड़के आसवका वर्ण भी लाली लिये होता है। क्योंकि उसमें एन्थोसाइनीन (Anthocynain) होता है। इसीसे गुड़का आसव लाली लिये रंगदार होता है, उसमें वैसी स्वच्छता नहीं होती।

क्या हरएक अम्लका आसवपर प्रभाव पड़ता है?

यह प्रयोगोंसे देखा गया है कि जबतक आसवमें सन्धान कार्य हो रहा हो तबतक उस घोलमें विद्यमान अम्ल निष्क्रिय रहते हैं। किन्तु, जब आसव बननेकी प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तो फिर वह अम्ल बने आसव अणुओं (या हलाहल अणुओंको) उष्मीकरणके लिये उत्तेजित करते हैं अर्थात् उत्प्रेरकका काम करते हैं। इसीलिये आसव-अणुको यदि खुला उष्मजन मिल रहें हों तो वह उष्मजनको ग्रहण कर नई रसायनिक प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। उस समय उष्मजनक परमाणु आसव अणुके साथ मिलकर नये अणुकी सृष्टि करते हैं जिसका नाम चुक्र या सिरका है।

मीठाके अणुसे लेकर आसवके अणु किस तरह बनते हैं और अम्लकी विद्यमानतामें आसवके अणु किस तरह सिरकेके

अणुमें परिवर्तित होते हैं इसकी हम वैज्ञानिक व्याख्या देते हैं ताकि पाठक इस निगूढ़ रहस्यको अच्छी तरह समझ सकें।

मीठासे आसवके अणु और सिरकाके अणु सूत्र।

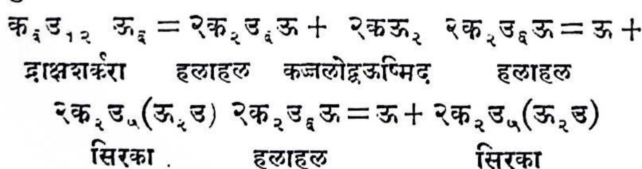
शर्करा अणुओंकी रचना कज्जल, उदजन और उष्मजनसे होती है। उसका साधारण सूत्र ($क_{१२}$ $उ_{२२}$ $ऊ_{११}$) है, जब यह द्राक्षोज फलोजमें विभाजित होती है तो उसका साधारण सूत्र ($क_{६}$ $उ_{१२}$ $ऊ_{६}$) होता है। कोई भी शर्कराके अणु रचनामें साधारणतः यह नियम है कि कज्जलके साथ जितने उष्मजनके परमाणु होते हैं उससे दुगने उदजनके परमाणु उसके साथ रहते हैं। इसमें अन्तर नहीं पड़ता। किसी भी चीज़की शर्करामें इन तीन तत्त्वोंसे भिन्न चौथा कोई और तत्त्व नहीं देखा जाता। समस्त शर्कराएँ दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं। जिसके स्फटीकरण द्वारा कण बनते हैं, जो स्वादमें मीठे लगते हैं, वह एक शर्करोज कहलाते हैं। जिनके स्फटीकरण द्वारा रवा रूप नहीं बनते, खानेमें फीके लगते हैं, उनको द्विशर्करोज़ कहते हैं। द्विशर्करोजमें मूल सूत्रके परमाणु दुगुने होते हैं। यह द्विशर्करोज एक शर्करोजमें भी बदल जाता है।

आसव या हलाहलकी अणुरचनामें भी कज्जल, उद्जन और ऊष्मजन यह तीन ही तत्वके परमाणु होते हैं। इसका रासायनिक सूत्र २ $क_{२}$ $उ_{५}$ (ऊउ) है। जब किण्व-कीटाणु उस शर्कराके अणु जिसमें ६ कज्जलके परमाणु होते हैं जिनके साथ एक या दो उद्जनके परमाणु जुड़े होते हैं वह कज्जलको उद्जनके साथसे विच्छेद कर डालते हैं। जब कज्जलको वह अपनी आकर्षणशक्ति द्वारा उस अणुसे तोड़ते हैं तो ऐसे [illegible] का एक अणु

उसके पेटमें चला जाता है और उस समय दो कज्जलके अणुके साथ पाँच-पाँच उदजनके तथा एक उष्मजनके अणु उससे मिलते हैं। एक कज्जलका अणु जो स्वतन्त्र हो जाता है दो उष्मजनके परमाणुओंसे मिलकर कज्जल द्विऊष्मिद नामक वायुकी सृष्टि करते हैं। इस तरह एक शर्कराणुसे दो हलाहलके अणु बन जाते हैं।

यहाँ हलाहलके अणु २क$_2$उ$_5$ (ऊउ) जब उष्मजनका स्पर्श पाते हैं तो एक अणु एक उष्मजन परमाणुको ग्रहण कर लेता है। इससे एक सिरकाका अणु (क$_2$उ$_5$ऊ$_2$उ) बन जाता है। सिरकाके अणुमें केवल एक परमाणु उष्मजनका बढ़ गया है इसीसे वह हलाहल अम्लरूप सिरका बन गया। इस तरह मीठा आसव और सिरका तीनों ही एकसे तत्वके पदार्थ हैं। केवल रसायनिक गठन बदलते ही उनका रूप, गुण, स्वभाव सब बदल जाता है।

उपरोक्त रसायनिक सूत्र बतलाते हैं कि हमने जितना मीठा, डाला था वही मीठाके अणु आसवमें बदलते हैं और आसवके अणु आगे चलकर सिरकामें बदलते चले जाते हैं। यथा—



$$\text{क}_6\text{उ}_{12}\ \text{ऊ}_6 = \text{२क}_2\text{उ}_6\text{ऊ} + \text{२कऊ}_2 \quad \text{२क}_2\text{उ}_6\text{ऊ} = \text{ऊ} +$$

द्राक्षशर्करा हलाहल कज्जलोद्वऊष्मिद हलाहल

$$\text{२क}_2\text{उ}_5(\text{ऊ}_2\text{उ})\quad \text{२क}_2\text{उ}_6\text{ऊ} = \text{ऊ} + \text{२क}_2\text{उ}_5(\text{ऊ}_2\text{उ})$$

सिरका हलाहल सिरका

यह भी देखा गया है कि जिस आसवमें अम्लता नहीं है वह आसव जल्दी खराब नहीं होते। उनमें यद्यपि उष्मीकरणकी इच्छा देखी जाती है और वह बने आसव यदि खुले पड़े रहें तो खट्टे होते चले जाते हैं किन्तु जितनी अम्लताकी उपस्थितिमें उष्मीकरण क्रियाकी उत्तेजना मिलती है अम्लरहितमें नहीं मिलती।

आसव बनाते समय कितना मीठा डालना चाहिये ?

आसव निर्माणमें जब औषधियोंका क्काथ बना लेते हैं तो शास्त्रमें हरएक आसवके साथ मीठाका परिमाण दिया होता है, वैद्य उतना मीठा उसी समय डाल देते हैं। कई आसवोंमें तो जितना क्काथ द्रव्य होता है उसका आधा या चौथाई तक मीठा लिखा होता है, वैद्य उतना ही डाल देते हैं। परिणाम यह होता है कि वह घोल इतना गाढ़ा शर्वत बन जाता है कि उसपर किण्व-कीटाणुओंका जीवन व्यापार चल ही नहीं सकता। यदि चलता भी है तो बहुत थोड़ा और चलकर बन्द हो जाता है। इससे उसमें हलाहलकी मात्रा पूरी न होनेपर अच्छा आसव नहीं बनता। वह एक मीठा शर्वत हो जाता है। जिसमें अन्य विकृति तो कम आती है किन्तु आसव बनानेका उद्देश्य उससे पूरा नहीं होता। परीक्षाओंसे देखा गया है कि किएव-कीटाणु अधिक गाढ़े घोलमें जीवननिर्वाहका काम अच्छी तरह नहीं कर सकते। जब मीठा अधिक हो अर्थात् १ मन पानीमें १० सेर मीठा—उनके जीवन-व्यापारमें बाधक होता है।

यदि मीठाका परिमाण कमसे कम षोड़शांश और अधिकसे अधिक अष्टमांश हो तो उस घोलमें उनका जीवन व्यापार अच्छी तरह चलता है। इसीलिये सन्धान प्रक्रिया भी खूब तेज़ीसे होती रहती है। एकबार मीठा डालनेपर जब वह मीठा आसवमें परिणत हो जाता है तो उस घोलमें फिर मीठाके अणु नहीं रहते। मीठाके आसव बन जानेपर उस घोंलमें मीठासका नामोनिशान नहीं रहता, ऐसी दशामें फिर अष्टमांश मीठा उसमें डाल दिया जाय तो फिर बड़े वेगसे सन्धान या ख़मीर उठने लगता है और आसव बनता चला जाता है।

कितने मीठेसे कितना आसव बनता है ?

परीक्षाओंसे ज्ञात हुआ है कि १¼ मन मीठासे १ मनके लगभग आसव (हलाहल) बन जाता है।

यदि हम दो मन आसव-द्रवमें दस सेर मीठा डाल दें तो उस द्रवमें आठ सेर हलाहल तय्यार हो जायगा। यदि उसमें फिर दस सेर मीठा डाल दें तो धीरे-धीरे आठ ही सेर और हलाहल बन जायगा। किन्तु अब इसमें और दस सेर मीठा डाल दें तो फिर इससे आगे आसव नहीं बनेगा। वह मीठा जैसाका तैसा ही पड़ा रहेगा। जिस तरह पहिली वार या दूसरी बार मीठा डालने पर सन्धान उठ खड़ा हुआ था तीसरी बारके मीठा डालने पर कोई सन्धान प्रक्रिया उस आसव द्रवमें नहीं दिखाई देगी। इसका कारण ? कई लोग समझते हैं कि इस तरह जितना मीठा डालते चले जाओ आसव बनता चला जायगा। यह बात नहीं। किसी घोलमें आसव बननेकी मर्यादा है। जिस घोलमें २० प्रतिशत आसव बन चुका हो फिर उसमें अधिक आसव नहीं बनता। इसका कारण है किण्व-कीटाणुओंका निष्क्रिय हो जाना।

जिस घोलमें २० प्रतिशतके लगभग हलाहल विद्यमान हो उस घोल या द्रवमें वह किण्व-कीटाणु अपना जीवन व्यापार नहीं चला सकते। वह हलाहल जो उन किण्व-कीटाणुओंसे उत्पन्न होता है उसकी २० प्रतिशत मात्रा उनको निष्क्रिय बना देती है। जब किण्व-कीटाणु अधिक हलाहलकी विद्यमानतामें मीठाको खाही नहीं सकते तो फिर उससे आसव बन ही कैसे सकता है ? इसीलिये वह मीठा जैसाका तैसा उस द्रवमें बना रहता है। यदि किसी तरह आसवकी मात्रा उस घोलसे कम कर दी जाय तो

फिर किण्व-कीटाणु अपना जीवन व्यापार आरम्भ कर सकते हैं और उस मीठासे फिर आसव बन सकता है। किन्तु विना परिश्रुत किये यह सम्भव नहीं।

उत्तापसे आसवका सम्बन्ध।

यह पीछे अच्छी तरह बतलाया जा चुका है कि मीठेसे आसवकी निर्माण प्रक्रिया किण्व-कीटाणुओं द्वारा ही सम्पादित होती है। कीटाणु सजीव प्राणी हैं। देखा जाता है कि समस्त विश्वके सजीव प्राणी एक निश्चित व सीमित उत्तापके भीतर ही अपना जीवन-व्यापार चला सकते हैं। जो प्राणी जिस उत्ताप पर जीवित रहते हैं यदि वह बना रहे तो उनकी जिन्दगी कायम रहती है और वह उसमें खूब फलते फूलते हैं। यदि किसी कारणवश उत्तापकी स्थिति एकाएक बदल जाय तो उनका जीवन संकटमें पड़ जाता है।

उदाहरण स्वरूप सबसे चतुर मानव-प्राणीको ही लीजिये, मनुष्यका शारीरिक उत्ताप सदा ९८॥ फारनहेडके समीप रहता है। और यह बाह्यके ६० से लेकर १०० फारनहेड पर अच्छी तरह जीवन निर्वाह करता है किन्तु जब कभी सर्दीके दिनोंमें उत्ताप घटकर ३० फारनहेड जा पहुँचता है तो मनुष्यके हाथ-पैर सुन्न होने लग जाते हैं और शरीर निष्क्रिय होता चला जाता है। इसी तरह जब उत्तापकी मात्रा बढ़कर ११५–२० लगभग जा पहुँचती हैं तो मारे गर्मीके हजारों मनुष्योंके प्राण पखेरु उड़ जाते हैं।

यही हाल अन्य प्राणियोंका है और यही उन किण्व-कीटाणुओंका भी है। यह भी एक निश्चित उत्ताप पर ही जीवित

रहते हैं। जब कभी वाह्य उत्तापमें किसी कारणसे अन्तर उत्पन्न हुआ नहीं कि इनकी जीवन-लीला खतम होनेपर आ जाती हैं। हम सब तो इतने चतुर हैं कि कोई न कोई कृत्रिम उपाय ढूँढ़कर अपनेको परिस्थिति प्रभावसे बचा लेते हैं परन्तु इनके पास ऐसा कोई भी साधन नहीं है कि यह उस स्थितिमें भी अपनेको बनाये रख सकें। इसीलिये आसव निर्माण कालमें स्थानिक उत्तापकी ओर अधिक ध्यान देना पड़ता है, जभी आसव अच्छे बन सकते हैं।

परीक्षाओंसे मालूम कर लिया गया है कि किण्व-कीटाणु २५ से लेकर ४० शतांशके उत्ताप पर यह अच्छी तरह जीवित रहकर अपना जीवन कार्य चलाते हैं। यदि स्थानिक तापकी मात्रा घटकर २० तक या इससे नीचे जा पहुँचे तो यह फिर निष्क्रिय हो जाते हैं। इसी तरह उत्ताप बढ़कर ५० शतांश हो जाय तो यह मर जाते हैं।

इसीलिये आवश्यक है कि उत्तापको पात्रके भीतर और बाहर एकसा स्थिर रक्खा जाय, तभी आसव ठीक बनेगा, यदि इसमें त्रुटि आ जाय तो आसव कभी ठीक नहीं बन सकता।

हमारे यहाँ इसीलिये तो प्राचीन समयमें आसवको बनाते समय आसवपात्रको पृथ्वी या धान्यराशिमें दबाकर रखते थे। धान्य, अन्न आदि तापरोधक हैं। शीतकालमें यदि पात्रको धान्य राशिमें रख दिया जाय तो जितना उत्ताप पात्रका होगा वह जल्दी नहीं घट पाता। अन्नका ढेर उसे रोके रखता है। भूगर्त्तमें भी जब आसव पात्र रक्खे जाते थे तो उसके आसपास अन्नतुष (भूसा) आदि ऐसे पदार्थ भर देते थे कि उसका उत्ताप स्थिर रह सके। किन्तु यह प्रक्रिया शीतकालके लिये ही उपयोगी है। अन्य

ऋतुओंमें आसवपात्रको दबानेसे आसवपात्रमें इतनी अधिक गर्मी बढ़ जाती है कि किएवकीटाणु मर जाते हैं। इसीलिये आसवमें सन्धानकार्य नहीं होता।

अधिक गर्मी बढ़नेका कारण ?

अधिक गर्मी बढ़नेके दो कारण हैं (१) ऋतु परिवर्तनजन्य उत्ताप। (२) सन्धानप्रक्रिया द्वारा प्रादुर्भूत उत्ताप।

यह तो सब जानते हैं कि सर्दियोंमें उत्तापकी मात्रा घट जाती है। यहाँ तक कि ४५–५० फारनहेड रह जाती हैं और गर्मियोंमें वह बढ़कर १०० के ऊपर तक जा पहुँचती हैं।

गर्मियोंमें जब तापकी मात्रा मान लो कि १०० है उस समय धान्य राशिमें या भूमिमें जहाँ भी पात्र रक्खा जायगा वहाँका उत्ताप भी वाह्य उत्तापके समतुल्य ही होगा। मकानके भीतर होनेसे उस स्थानका उत्ताप मान लो ६० है, तो क्या वह उत्ताप इतना ही बना रहेगा ? हरगिज़ नहीं।

जिस समय सन्धान प्रक्रिया आरम्भ होगी उसी समय उस पात्रमें गर्मी बढ़ती चली जायगी और ख़मीर उठनेके साथ-साथ वह और बढ़ती चली जायगी, यहाँ तक कि बाहरका जितना उताप है उसके बराबर जा पहुँचेगी।

अब, यहाँ उत्ताप तो चाहिये ज्यादा से ज्यादा ७०–७५ फारन-हेड का किन्तु बढ़कर ९० या १०० पर जा पहुँचा तो जहाँ उत्ताप ७५ से ऊपर बढ़ा नहीं कि उन किण्व-कीटाणुओंका जीवन व्यापार समाप्त हो जाता है। उस आसवमें ख़मीर उठना बन्द हो जाता है, इसका परिणाम यह होता है कि आसव जैसाका तैसा रह जाता है। इसीलिये गर्मियोंमें आसवको दबाकर बनाना महान् भूल है। गर्मियोंमें तो जबतक शीत कोठरीका प्रबन्ध न हो आसवमें

सन्धानक्रम चलता ही नहीं। गर्मियोंमें बाहर रक्खा हुआ जब आसव इतना गरम हो जाता है कि उसका सन्धान रुक जाता है तो दवाकर बनानेसे तो गरमी रोककर उसकी सन्धान प्रक्रियाको होनेसे पहले ही रोक देना है।

तो गर्मियोंमें आसव कैसे बनाना चाहिये ? गर्मियोंमें आसव बनानेके लिये बहुत ठण्ढी जगह चाहिये। जहांकी गर्मी सदा ६०—७५ फारनहेड से अधिक न हो। यदि जहांकी गर्मी इतनी हो कि सन्धानके समय ७५ के ऊपर जा रही हो तो उस आसवके पात्रमें बरफकी पोटलियां डाल देनी चाहिये ताकि सन्धान समयमें बढ़ने वाला उत्ताप इतना न बढ़ पावे कि किण्व कीटाणु ही मर जायँ। बड़ी-बड़ी फैक्टरियोंमें तो हौजों व ढोलोंके भीतर ठण्ढे पानीकी नालियां कुण्डलाकार डाली होती हैं जिनमें एक ओरसे ठण्ढा पानी आता रहता है और दूसरी ओरसे निकल जाता है। इस ठण्ढे पानीकी नलियोंके स्पर्शसे वह आसव द्रव सदा ठण्ढा बना रहता है। उसमें ख़मीर उठनेसे जो गर्मी बढ़ती है उसे वह ठण्ढे पानीके नल कम करते रहते हैं। इस तरह उस आसव पात्रका उत्ताप ६०—७५ फारनहेड के लगभग बनाये रखते हैं। इसीलिये उसमें जो सन्धान उठता है वह अन्ततक बराबर जारी रहता है, इसीलिये उनका इच्छित आसव तय्यार हो जाता है।

क्रियात्मक आयुर्वेदके कर्ताने पृष्ठ ५४ पर लिखा है कि "ख़मीर तभी उम्दा उठेगा जब कि भीतर गर्मी तथा आन्तरिक दबाव बढ़ेंगे। यदि मुँह खुला रहे तो बाह्य वायुमण्डलके संसर्गमें आनेके कारण न तो भीतरकी गर्मी स्थायी बनेगी न आन्तरीय दबाव ही बढ़ेगा।"

गर्मियोंमें यह आपका आविष्कार तो ख़मीर उठने ही देनेका नहीं। यदि उठा भी तो एक दिन भी चल नहीं सकता। पात्रमें इतनी गर्मी बढ़ जायगी कि किएव-कीटाणु उसी समय मर जायँगे। यहाँपर आपने आन्तरिक दवाव (Internal pressure) नामका एक और कारण आसव निर्माणार्थ आविष्कार कर मारा है। आप तो इन आविष्कारोंके करनेमें वैज्ञानिकोंके भी लकड़ दादा सिद्ध हो गये हैं। औरोंको विज्ञानका ठेकेदार व पण्डित सिद्ध करते-करते स्वयम् सिद्ध बन गये। कहिये! आयुर्वेदालंकार जी महाराज! यह आविष्कार कहाँ बैठकर किये थे? और किस तरह विज्ञान सम्मत हैं? इसकी ज़रा व्याख्या तो करिये? पाठको! आन्तरिक घोलमें यदि पात्रका मुँह बन्द कर दें तो दबाव कैसे बढ़ेगा? क्यों बढ़ेगा? और वह साधक होगा या वाधक इसको विचारे निरे आयुर्वेदाचार्य व आयुर्वेदालंकार क्या जानें? न तो इन्होंने इस विषयका वैज्ञानिक रीति पर अध्ययन ही किया है और न इन्हें इस विषयका क्रियात्मक ज्ञान ही है। हाँ, है तो एक मात्र इनके पास वाक् पटुता। इसमें ये सब निपुण हैं, अपनी वाक् चातुरीसे सचको झूठ और झूठको सच सिद्ध करनेमें सिद्ध हस्त अवश्य हैं।

क्या ख़मीरसे आन्तरिक दबावका कोई सम्बन्ध नहीं? सबसे पहिले यह बात देखने योग्य है कि आन्तरिक दबाव क्या चीज़ है? दूसरे बन्द बर्त्तनमें आन्तरिक दबाव बढ़ता भी है या नहीं। हम इसको उदाहरण देकर समझावेंगे।

इस पृथ्वी-मण्डलपर हवाका एक मण्डल है। यह हवा मण्डल धरातलसे ऊपर कोई २०० मील तक फैला हुआ है। किन्तु पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिके कारण इसका दबाव पृथ्वीकी ही ओर

है। जैसे-जैसे पृथ्वीको छोड़कर अन्तरिक्षकी ओर उठिये हवाका दवाव कम होता चला जायगा। परीक्षाओंसे देखा गया है कि पृथ्वीके धरातल पर हवाका दवाव ७½ सेर प्रति वर्ग इंच है। समस्त प्राणियों पर भी इसी हिसाबसे हवाका दबाव बना रहता है। प्राणियों पर यदि यह दवाव किसी एक ओरसे हो तो वह प्राणी इस हवाके चापसे दबकर मर जाय। किन्तु नहीं। इसका दबाव भीतर-बाहर, नीचे-ऊपर सब तरफसे एक सा पड़ता है। जभी शरीर पर इसका सब तरफसे सन्तुलन एक सा रहनेके कारण हमें उस दवावका कोई पता नहीं चलता, किन्तु हम हवाई जहाजमें बैठकर पांच मील ऊपर उड़जांय तो वहां क्या दिखाई देगा कि सांसलेना दूभर हो रहा है, शरीरका सारा धमनिजाल फैलता चला जा रहा है। शरीर हल्का-हल्का मालूम होगा, और पैर चलते समय सीधे नहीं पड़ेंगे। आश्चर्य नहीं कि ऐसे समयमें कोई धमनी फट जाय। क्योंकि बाहरकी हवाका एकाएक-दवाव कम हो जानेके कारण आन्तरिक दवाव इतनी जल्दी नहीं घट सकता। जभी धमनियाँ फैलने लगतीं हैं और फैलकर फटने पर आजाती हैं।

इसी तरह यदि हमें ऐसे वातावरणमें लेजाया जाय जहाँकी हवाका दवाव ७½ सेर प्रतिवर्ग इंचसे अधिक हो तो शरीर दबता चला जायगा और शरीर पर चारों ओरसे भार मालूम देने लगेगा, इस तरह साधारणतः दबावके घटने बढ़नेमें बाह्य वातावरण कारण है। अब देखना यह है कि इसी तरहका कोई कारण आसव पात्रके भीतर भी है, या नहीं। जिस आसव पात्रमें सन्धानके लिये जल, क्वाथ व मीठा आदि एकत्र करके डाले जा चुके हैं। उस द्रवमें जलकी अपेक्षासे आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ा होता है। यह द्रव जिस वर्तनमें बन्द किया जाता है उसमें—यदि वह पात्र कुछ

खाली हो तो उसमें हवा होती है। यदि खाली न रक्खा जाय तो उसमें सिवाय द्रवके और कोई चीज़ नहीं होती। आयुर्वेदालंकार-जीके कथनानुसार आन्तरिक दबाव कैसे बढ़ेगा ? इसका आपने कोई क्रम नहीं बताया।

शायद आपका अभिप्राय यह हो कि गर्मी बढ़नेसे आन्तरिक दबाव बढ़े। गर्मीके बढ़नेसे वस्तुएँ फैलती हैं। द्रव भी फैलेगा। इसीलिये पात्र मुहाँमुह भरा रहनेसे और बाहरसे भी बन्द होने के कारण उससे दबाव बढ़ेगा, ऐसा आपका अभिप्राय हो तो यह सही नहीं। गर्मीके बढ़नेसे दबाव नहीं बढ़ता। दबाव तो तभी बढ़ेगा जब उसे कोई दबाने वाली चीज़ चारों ओरसे दबावेगी। गर्मीसे चीज़ें फैलती हैं, न कि दबती हैं। भीतरी दबाव तो तभी बढ़ेगा जब कोई उसमें ऐसी वस्तु उत्पन्न हो जाय जो उसपर बोझ डाल सके वह भी उसके भीतर (आन्तरिक भागमें हो)।

शायद आपका यहां पर अभिप्राय कज्जल द्विउष्मिद (Carbon di oxide) से हो। क्योंकि जब खमीर उठता है तो उस मीठेसे एक ओर जहां आसव या हलाहल बनता है दूसरी ओर कज्जलद्विउष्मि नामक वायु भी उत्पन्न होता रहता है। जैसे-जैसे कज्जलद्विउष्मिद बनता जाता है पात्रका मुँह बन्द होनेके कारण वह बाहर तो निकल नहीं सकता, इसीसे बढ़ता जाता है और उसके बढ़नेसे आन्तरिक दबाव भी बढ़ जाता है। क्योंकि यह एक ऐसी चीज़ है कि जिसकी वृद्धिसे बन्द बर्त्तनमें दबाव बढ़ सकता है। किन्तु, परीक्षाओंसे देखा जाता है कि जैसे-जैसे कज्जलद्विउष्मिद बनता जाता है वैसे-वैसे खमीर उठनेकी प्रक्रिया बजाय बढ़नेके घटती चली जाती है। पाठक कहेंगे यह क्यों ? सुनिये।

संसारमें जितने भी प्राणी हैं सब शुद्ध हवामें ही सांस ले सकते हैं और शुद्ध हवामें ही वह सांस लेकर जीवित रह सकते हैं। अशुद्ध हवामें नहीं। शुद्ध हवासे अभिप्राय है जिसमें एक दो प्रतिशतसे अधिक कज्जलद्विउष्मिदका मिश्रण न हो, उस हवाको शुद्ध माना जाता है। यदि हवामें ५ प्रतिशत भी कज्जलद्विउष्मिद बढ़ जाय तो प्राणियोंका जीवन संकटमें पड़ जाता है। ५ प्रतिशत कज्जलद्विउष्मिद मिली हवाको अशुद्ध हवा कहते हैं। जिस पात्रका मुख बन्द हो और उस पात्रमें खमीर उठ रहा हो तो वहाँ आसव बननेके साथ ही कज्जल-द्विउष्मिद भी बनता जाता है। जलमें जिस तरह उष्मजन घुल जाता है। या घुला रह सकता है उसी तरह कज्जलद्विउष्मिद भी घुल जाता है, और घुला भी रहता है। मान लो, उस सन्धान द्रवमें जितना उष्मजन था खमीर उठनेके साथ उसका उपयोग तो किण्व-कीटाणु करते चले गये और साथ ही उसके कज्जल द्विउष्मिद उत्पन्न करते चले गये। जबतक तो उन्हें उष्मजन मिला और कज्जलद्विउष्मिदकी मात्रा ५—६ प्रतिशतसे अधिक न हुई तबतक तो सन्धान होता रहेगा। उष्मजनके समाप्त होने पर उनका जीवन व्यापार समाप्त हो जाता है। इससे भिन्न कज्जलद्विउष्मिदकी अधिक मात्रा बढ़नेपर भी चाहे उष्मजन विद्यमान ही क्यों न हो, उनका जीवन-व्यापार बन्द हो जाता है।

आपने कई बार सुना या पढ़ा होगा कि अनेकों आदमी सर्दीके दिनोंमें अंगीठी जलाकर बन्द मकान करके सो गये और रातको सोते ही सोते दम घुटकर मर गये। यही हाल उन बिचारे किण्व-कीटाणुओंका होता है। कज्जलद्विउष्मिदके बढ़ते ही उस बन्द बर्तनमें उनके दम घुट जाते हैं और वे मर जाते हैं।

कज्जलद्विउष्मिद जब बनने लगता है तो प्रायः इस वायुके कारण उस बन्द पात्रका कुछ ही दबाव बढ़ जाता है। किन्तु, इस दबावके बढ़नेसे ख़मीर उठनेमें कोई सहायता नहीं मिलती। प्रत्युत ख़मीरको रोकनेमें इससे अवश्य सहायता मिलती है। क्योंकि जब कि कज्जलद्विउष्मिद बनकर वर्तनमें बन्द हो रहा हो, उसे निकलनेके लिये मार्ग न मिले और शुद्ध वायु प्रवेश न करे तो कभी सन्धान कार्य या ख़मीर उठनेकी प्रक्रिया जारी नहीं रह सकती।

वैद्योंके आसव बोतलोंमें भर देनेपर क्यों बोतलोंसे उबल पड़ते हैं ? इसका कारण यही होता है कि वह बन्द मुँह करके आसव बनाते हैं इसीसे उस बन्द बर्तनमें जबतक उष्मजन रहता है और कज्जलद्विउष्मिद अधिक मात्रामें सञ्चित नहीं हो जाता तबतक सन्धान कार्य होता रहता है। जब इसकी मात्रा अधिक हो जाती है तो उनका काम बन्द हो जाता है और ख़मीर उठना रुक जाता है। वैद्यजी महाराज तो १५ दिन या ३० दिन उस बन्द वर्तनको खोलते नहीं। अवधि समाप्त होनेपर जब पात्रका मुँह खोलते हैं तो उसमेंसे कज्जलद्विउष्मिद निकलने लगता है और हवाका उसमें पुनः प्रवेश होता है। वैद्यजी उसे छान-छानकर बोतलोंमें भरते चले जाते हैं। इस खोलने और छाननेमें कज्जलद्विउष्मिदका बहुतसा अंश निकल जाता है जो स्थान खाली होता है उसे उष्मजन ले लेता है। ऐसी स्थितिमें किण्व-कीटाणु जो समाधि स्थितिमें चले जाते हैं अर्थात् (spore) स्पोर बन जाते हैं। यदि ऋतु अनुकूल हो तो वह फिर उष्मजनको उपस्थिति पाकर सक्रिय हो जाते हैं और दो चार दिनमें ही उन बोतलोंमें भरे आसवमें पुनः अपना जीवन कार्य सम्पादन करने

लगते हैं। इसीसे उसमें पुनः ख़मीर उठ खड़ा होता है और उन बोतलोंमें पुनः कज्जलद्विउष्मिद बन-बन कर भरने लग जाता है। जहाँ तक तो उस द्रवमें कज्जलद्विउष्मिद दबकर समा सकता है उसमें मिलता, घुलता, समाता रहता है, जब उसका दबाव अधिक हो जाता है—इतना ज्यादा कि कार्क उस दबावको सहन नहीं कर सकता, तो वह अपने चापसे बोतलके कार्कको उठा देता है। कार्क भकसे उड़कर छतसे जा टकराता है, वह गैस बाहर निकलने लगता है, वही कज्जलद्विउष्मिद जो आसवमें घुला होता है बाहर निकलनेका मार्ग मिलते ही आसवको लेकर बाहर आ जाता है। जिस तरह सोडा लैमोनेट बोतल खोलने पर उस जलमें घुला हुआ वह कज्जलद्विउष्मिद उसे उबालके साथ लेकर बाहर आ जाता है, यही बात यहां होती है।

सूक्त क्यों बनता है ? इसपर आयुर्वेदाचार्य हरदयालजीका कथन है कि "जब कार्बोनिकएसिडगैस उत्पन्न हो और उसे बाहर न निकाला जावे (बनते समय तो आप बर्तनका मुँह बन्द करनेकी आज्ञा देते हैं फिर निकाला कैसे जावे ?) तथा इसकी समाप्ति पर (ख़मीरकी समाप्तिसे शायद आपका अभिप्राय है) अत्यधिक समय तक पक्व आसव घटमें ही पड़ा रहे—तो जो मद्यांश उत्पन्न होता है वह पुनः आसवीय प्रक्षेपके सड़नेसे अम्लतामें परिणत हो जाता है जिससे आसवमें अम्लता आ जाती है और वह आसवके स्थान पर शुक्त (सिरका) में परिवर्त्तित हो जाता है।"

आयुर्वेदाचार्य जी महाराज ग्रन्थों पर टीकायें तो लिखते हैं, और विद्यार्थियोंको भी पढ़ाते हैं किन्तु, डी० ए० वी० कालेजमें रहते हुये इतना भी न जान पाये कि कार्बोनिक एसिडगैसकी

अधिक समय तक विद्यमानतामें खटास उत्पन्न होता है कि उष्मजन (ओक्सीजन) की उपस्थितिमें। उन्हें इतना भी पता नहीं कि कार्बोनिकएडिस गैसकी उपस्थितिमें आसवीय प्रक्षेप सड़ भी सकता है कि नहीं ? यदि इतना भी पता नहीं था तो पुस्तक लिखनेसे पूर्व किसी साइन्सकालेजके प्रोफेसरसे ही पूछ लेते।

आयुर्वेदाचार्य जी महाराज! वस्तुओंमें सड़नेकी प्रक्रिया उष्मजनकी उपस्थितिमें होती है, न कि कार्बोनिक एसिडगैसकी उपस्थितिमें। और आसवमें अम्लता भी उष्मजनके सम्पर्कसे आती है, न कि कार्बोनिक एसिडगैसकी विद्यमानतासे। मालूम होता है आपको कार्बोनिक एसिड (Carbonic Acid) शब्दने इस भ्रममें डाल दिया। एसिड अम्लको आँगल भाषामें कहते हैं। आपने समझ लिया जब यह गैस तेजाबी असर रखती है तभी यह अधिक समय तक आसवमें दबी रहनेसे आसवको खट्टा कर देती होगी। यदि यही बात हो तो बलिहारी जाइये आपकी बुद्धिकी। आपके उक्त गैस सम्बन्धी कथन पर आयुर्वेदालंकारजी अपने क्रियात्मिक आयुर्वेदके पृष्ठ ७५ पर आलोचना करते हुवे फ़र्माते हैं।

"आयुर्वेदिक विधिमें वैज्ञानिक शैली पर बहस करना उपयुक्त नहीं (क्यों ? क्या आयुर्वेद अवैज्ञानिक है ?) तो भी इतनी चेतावनी देनी पर्याप्त है कि उसमें (आसव सन्धानमें) विशुद्ध कार्बोनिकाम्ल गैस नहीं होती। अन्य गैस भी मिश्रित होते हैं।"

यह आयुर्वेदालंकारजीने कौन सी आयुर्वैदिक विधिसे मालूम किया ? वैज्ञानिक शैलीसे तो आप बहस करना नहीं

चाहते तो आपको अन्य गैसोंका पता कैसे लगा ? सच कहना ! कहीं धृतराष्ट्र वाली आँखें तो नहीं प्राप्त कर लीं ?

कार्बोनिक एसिड गैसकी पहचान यदि कविराज हरदयालकी बतलाई ग़लत मालूम होती है तो आइये, मैं आपको एक साधारणसी विधि बतलाये देता हूँ, इसे करके देखिये। जिस मटकेमें आसवका ख़मीर उठ रहा हो उसपर एक रबड़की थैली बाँध दीजिये और उस थैलीमें एक स्थान पर छेद करके उसमें रबड़की नाली लगा दीजिये। फिर कलीचूनाको पानीमें घोलकर उसका स्वच्छ पानी निकाल लीजिये या किसी अंगरेजी कैमिस्टकी दुकानसे लाइमवाटर ले आइये। बस, उस लाइमवाटरमें रबड़की नालीका दूसरा सिरा उस चूनेके पानीके अन्दर डाल दीजिये। थोड़ी देरमें ही आप देखेंगे कि वह स्वच्छ चूनेका पानी दूधिया हो जायगा। यह कार्बोनिक एसिडगैसके होनेकी साधारण परीक्षा है। आसव सन्धानमें केवल कार्बोनिक एसिड गैस ही बनती है, अन्य कोई गैस नहीं। न वहाँ कोई अन्य गैस ही (हवामें रहने वालियोंसे भिन्न) होता है। यह आप हमसे नहीं समझना चाहते तो आधुनिक किसी वैज्ञानिक पण्डितसे ही जाकर समझ लीजिये।

जिस किसी व्यक्ति को यह संशय रहे कि आसव कज्जल द्विउष्मिद वायुकी विद्यमानतामें ही बिगड़ते हैं उन्हें चाहिये कि उत्तम बने हुवे आसवकी एक बोतल लेकर किसी सोडावाटर-फैक्टरी वालेके पास चले जाँय और उस फैक्टरी वालेसे कहें कि इस आसवमें कार्बोनिक एसिडगैस मिलाकर सोडा वाली बोतलोंमें बन्दकर दे। वह बोतल साल छः महीना जितने दिन चाहें रखकर फिर देखें कि बोतल खोलनेपर जब गैस निकल

जाय उस आसवको चाखकर स्वाद लेकर परीक्षा करें। यदि आरम्भमें अम्लद्योतक पत्रसे परीक्षा करके पुनः बोतल बन्द की हो तो अम्लद्योतकसे ही पश्चात् भी परीक्षा लेकर देख सकते हैं कि इसमें अम्लता आई है, या कि नहीं ? ऐसी परीक्षाओंसे सच झूठका आसानीसे पता लग सकता है, वृथा विवाद विडम्बना मात्र है।

आसव बनते समय व पीछे मीठा मिलाना।

मैंने अपनी आसव-विज्ञान नामक पुस्तकके प्रथम संस्करणमें बने आसवको सुरक्षित रखनेके लिये उसमें मीठा मिलानेका आदेश दिया है। वहाँ यह पंक्तियाँ दी हुई हैं। "जब आसव बन चुकता है तो उसमें विद्यमान कीटाणुओंका काम एक तरहसे समाप्त हो जाता है, जब तक उसमें और जल मीठा न पड़े। किन्तु, जहाँ पर आसवोत्पादक कीटाणुओंका कार्य समाप्त होता है वहांसे सिरका बनाने वाली जातिके कीटाणुओंका कार्य आरम्भ होता है। अर्थात् आसव बन जानेपर फिर सिरका बनता है।" सिरका बननेसे बचानेके लिये मैंने आगे चलकर ८२ पृष्ठ पर लिखा है—"आसव छन जाने पर जितना बना हुआ आसव हो उसकी चौथाई खाँड़ या स्वच्छ चीनी लेकर उसमें मिला दें। यदि छाननेका प्रबन्ध शीघ्र न हो सके तो आसवीय घोलेमें परिवर्तनके शान्त होते ही अन्दाज़से उसमें चौथाई या पञ्चमांश मीठा और छोड़कर घोलको हिला दें। आसवीय घोलमें और मीठा मिलाने पर न तो आसवांश नष्ट होता है, न औषधियों द्वारा उत्पन्न गुणोंमें अन्तर आता है। प्रत्युत, आसव छाननेसे पूर्व या पश्चात् चौथाई या पंचमांश

मीठा मिला देने पर एक तो फिर आसवके एका-एक बिगड़ने का भय जाता रहता है। दूसरे चन्दनासव, कुमार्यासव जैसे कटु स्वाद वाले आसव भी स्वाद वाले हो जाते हैं।"

क्रियात्मिक आयुर्वेदके कर्त्ताने उपरोक्त पंक्तियोंको किस तरह इच्छानुसार तोड़-मरोड़ कर लिखा है, पाठको! जरा ध्यानसे देखिये।

क्रियात्मिक आयुर्वेद पृष्ठ ७९ पर **"बिगड़े आसवको सुधारना"** शीर्षकके नीचे लिखा है—

"आसव विज्ञान नामक पुस्तिकामें लिखा है कि आसवको बिगड़नेसे बचानेके लिये **हर बार आसव छाननेके बाद** पाँचवाँ हिस्सा खाँड मिला देनी चाहिये।"

पाठको! यदि आपके पास आसव-विज्ञानकी प्रथम आवृत्ति हो तो वहाँ तलाश करिये कि मैंने किस पृष्ठ पर (हर बार आसव छाननेके बाद पाँचवाँ हिस्सा खाँड डालना लिखा है)। इसका नाम है संसारको धोका देकर नाम पैदा करना। खैर! आगे आप लिखते हैं—इसके साथ ही उनकी (आसव विज्ञानके प्रणेताकी) दलील यह है कि आसव क्रियामें जो आसव कीटाणु काम आते हैं उनका आधार मीठा है। **बार-बार मीठा डालनेसे वे जीवित रहेंगे** और हमारा आसव भी सुरक्षित रहेगा।" पाठक! बार-बार मीठा डालनेसे वे जीवित रहेंगे और आसव भी सुरक्षित रहेगा। इस पंक्तिकी भी आसव विज्ञानमें तलाश करिये। अच्छा! और आगे चलकर आप कहते हैं—"उक्त दोनों बातें ठीक नहीं, क्योंकि हर बार आसव छानते समय मीठा मिलाते रहें। एक तो मीठे का कोई

परिमाण न रहा, पहिले ही आसवमें मीठा अत्यधिक लिखा है, तिस पर पाँचवाँ हिस्सा जब तब छोड़नेका जो परिणाम होगा वह आप ही सोच लें। बार-बार मीठा डालकर जीवाणु ज़िन्दा रखनेकी बात छोड़ें। सीधे शब्दोंमें यह कहिये कि जितना अधिक मीठा छोड़ेंगे उतना ही मीठा रहेगा—यह ही इनका अभिप्राय है।" पाठको! इन अभिप्राय युक्त पंक्तियोंकी भी तलाश करें। आगे आप लिखते हैं। "जब पहिले मीठा डाल दिया जाता है फिर आसवमें ख़मीर उठते समय मटकेमें खिचड़ी पकनेकी-सी आवाज़ सुनाई देती है। जब वह आवाज़ बन्द हो जाती है तो समझा जाता है कि आसव प्रक्रिया समाप्त हो गई। दूसरी बार खाँड छोड़नेसे फिर प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और आवाज़ पूर्ववत् सुन सकते हैं। तीसरी बार खाँड फिर छोड़ी और फिर क्रिया शुरु हो गई। न कोई मर्यादा रही और न मीठेका कोई परिमाण ही रहा। बार-बार खमीर उठनेका परिणाम भी आसव विकृतिके अतिरिक्त कुछ न होगा। यदि मीठा ज़रूरतसे ज्यादाः डालियेगा तो औषधका प्रभाव कम होकर मीठेका प्रभाव अधिक हो जायगा। परिणाम यह होगा कि ख़मीर बार-बार उठेगा और आसव विकृत हो जावेगा।"

मालूम होता है आयुर्वेदालंकारजीको या तो आता जाता कुछ नहीं। येण केण प्रकारेण आयुर्वेदालंकार बन गये या भाँग पीकर दूसरेकी किताबको पढ़कर लिखने बैठ गये इन दो बातोंमेंसे एक बात अवश्य है। वरना इतनी ऊटपटांग बातें न लिखते।

आप शीर्षक तो देते हैं "बिगड़े आसवको सुधारना"। और प्रसंग आरम्भ करते हैं आसव तय्यार हो जानेपर मीठा

मिलानेकी बात। और लिखते-लिखते पहुँच जाते हैं आसव बननेके समय मीठा मिलानेकी बात पर। आसव बनते समय मीठा मिलानेका प्रसंग और है, कारण और है। किन्तु, तय्यार होनेपर मीठा मिलानेका कारण और है, अवसर और है। और यही नहीं, मैंने हर स्थान पर मीठा मिलानेके कारणोंका स्पष्टतया उल्लेख भी किया है परन्तु पता नहीं वह आगेकी पंक्तियां अधिक नशेके कारण दिखाई नहीं दीं या मतिभ्रम नामक रोगने उस समय आपको आ घेरा, कुछ कहा नहीं जाता।

बनते समय आसवमें थोड़ा-थोड़ा मीठा डालनेका उल्लेख तो हम पीछे कर चुके हैं। किन्तु आसवके तय्यार होनेपर मीठा क्यों डालना चाहिये? इसका कारण हम पृष्ठ ७८ व ८२ पर बतला चुके हैं कि आसव बन जाने पर उस आसवसे फिर सिरका बना करता है। यदि हम ऐसे समय आसवको सुरक्षित रखनेके साधनको काममें न लावें; धूल, मक्खी, मच्छर आदि आसव तक पहुँचकर उसमें सिरकाम्लके अणु या कीटाणु पहुँचा सकते हैं और उससे आसव खराब हो जानेका भय सदा बना रहता है। इसीलिये आसव बन जानेके पश्चात् छान लेनेपर या छाननेसे पूर्व चौथाई मीठा मिला देनेपर आसव सुरक्षित हो जाता है।

क्योंकि यह हर एकके अनुभवकी बात है। गाढ़े शर्बत या चासनीके पड़े रहनेपर ये एका-एक नहीं बिगड़ते। अधिक मात्रामें मीठा आसवों या घोलको गाढ़ा कर देता है। जब आसव गाढ़ा हो जाय तो उसमें उष्मजनका प्रवेश भी आसानीसे नहीं होता। आसवकी उष्मजनसे मिलनकी शक्तिको मीठा दबा देता है। दूसरे सिरका आदि बनाने वाली शक्ति भी उस गाढ़े घोलको

जल्दी भेदन नहीं कर सकती, कई बार ऐसा भी देखागया है कि ऋतु आदिके एकाएक परिवर्त्तनसे सन्धानका कार्य बन्द हो जाता है। कई व्यक्ति भूलसे आसवको बना समझ लेते हैं। ऐसी स्थितिमें संरक्षणार्थ उसमें मीठा डालदिया जाय और छान कर रख लिया जाय तो काल पाकर या ऋतुअनुकूल होनेपर उसमें फिर मन्द गतिसे सन्धान होता रहता है, उस स्थितिमें आसव और तीक्ष्ण हो जाता है। उसमें हलाहलांश और बढ़ जाता है, न कि बिगड़ जाता है।

मीठा मिलानेसे एक और लाभ—जिस तय्यार आसवमें मीठा अधिक पड़ा होता है वह आसव काला भी जल्दी खराब नहीं होता। जिस तरहसे आसवके अणु उष्मजनके इच्छुक होते हैं इसी तरह कषायका कषायिन (Tannin) नामक मूल द्रव्य—जो वनस्पतियोंमें होता है—और क्वाथ करने पर जलमें घुल जाता है, उसको भी उष्मजनसे रसायनिक प्रीति देखी जाती है। यदि आसवमें लोहांश हो तो इसकी रसायनिक प्रीति और भी बढ़ जाती है। इसीलिये यह उष्मजन ग्रहण करके एक प्रकारके कषायाम्लमें परिवर्त्तित होता रहता है जिससे आसवका वर्ण काला होता चला जाता है। लोहासव और कुमार्यासव इसी कारण जल्दी काले पड़ जाते हैं। इनको काला होनेसे थोड़ा बहुत रोकनेका कोई साधन है तो वह एक मात्र मीठा है।

क्रियात्मक आयुर्वेदके कर्त्ताने लिखा है बारम्बार मीठा मिलानेसे खमीर बार-बार उठेगा, और आसव विकृत हो जायगा। उसने इसका कारण कोई नहीं दिखलाया कि क्यों और कैसे विकृत हो जायगा ?

हम पीछे सिद्ध कर आये हैं कि २० प्रतिशत जबतक

हलाहल न बन जाय तबतक ख़मीर उठ सकता है इससे आगे फिर ख़मीर उठ ही नहीं सकता, चाहे आप कितना ही प्रयत्न करें। कितना ही मीठा क्यों न डालें। फिर वह कहता है "मीठा ज़रूरतसे ज्यादा डालोगे तो औषधका प्रभाव कम होकर मीठेका प्रभाव अधिक हो जायगा।"

मीठा डालनेसे औषधका प्रभाव कम हो जाता है यह आयुर्वेदालंकारजीका ही नया आविष्कृत सिद्धान्त है। ग्रन्थोंमें तो इसका कहीं पता नहीं चलता और न व्यवहारमें ही ऐसा देखा जाता है। यदि मीठेसे औषधका प्रभाव कम हो जाता हो तो यूनानी वाले कभी भी औषधियोंके शर्बत बनाने और उन्हें अधिक समय तक रखकर व्यवहारमें लानेका कभी आदेश न करते।

आधुनिक युगके जितने भी चिकित्सक हैं क्या एलोपेथी वाले, क्या होमियोपैथी वाले सब मीठा और माड़ी (Starch) को औषध रूपमें न साधक समझे हैं न कि वाधक, न तो मीठा किसी औषधके गुणोंमें कोई अन्तर डालता है और न घटाता है न वढ़ाता है। इसीलिये होमियोपेथी वाले मुख्यतया अपनी प्रायः समस्त सूखी सत्वरूप औषधियां मीठेमें मिलाकर तय्यार रखते हैं। कई खांड चढ़ा देते हैं। इन सब गण्यमान चिकित्सकोंको जो बात नहीं सूझी वही आयुर्वेदालंकारजीको सूझ गई। इसीका नाम तो है नवीनता जो आपने भूमिकामें नवीनताकी प्रतिज्ञा की थी स्थान-स्थान पर इस नवीनताका खूब ही अद्भुत परिचय दिया।

पुस्तक शंका समाधान और आक्षेपोंके उत्तर देनेमें ही काफ़ी वढ़ गई है। फिर भी मैंने आवश्यक वातों पर काफ़ी प्रकाश डाल दिया है। अब मैं संक्षेपमें एक दो ऐसी बातों पर विचार करूँगा जो शास्त्रोंसे सम्बन्ध रखती हैं।

आसवोंमें जलका परिमाण ।

यद्यपि आसवोंमें जलकी मात्रा कितनी होनी चाहिये इस बातको प्रायः समस्त ग्रन्थकारोंने उन योगोंके साथ बतला दी है। कोई भी योग ऐसा नहीं जिसके साथ जल की मात्रा न दी गई हो। इसलिये जलके सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं रहता।

किन्तु, आसव बनाते समय देखा जाता है कि समस्त आसवोंमें जलकी मात्रा एक सी नहीं होती, न परस्पर आसवों-की द्रवता ही मिलती है। कोई आसव अत्यन्त गाढ़ा बनता है, कोई पतला। किसीमें जल थोड़ा है, तो किसीमें बहुत ज्यादा। प्रायः देखा जाता है कि जिनमें जलकी मात्रा न्यून होती है वह आसव लिखे प्रमाण मीठा छोड़ देनेपर उठते ही नहीं, उनमें इतनी अगाढ़ता आ जाती है कि मीठा पड़कर वह गाढ़े घोलमें परिणत हो जाते हैं। यदि ऐसे आसवोंमें सन्धान हो भी तो जितनी मात्रा उसमें हलाहलकी होनी चाहिये उतनी नहीं बन पाती। इसलिये ऐसे आसव या तो शर्बत बने रह जाते हैं या किसी अन्यरूपमें वे परिवर्त्तित हो जाते हैं।

इस स्थान पर सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि हम जिन औषधियोंके गुणरूप भागको; तरल सारोंको सुरक्षित रखना चाहते हैं उसके लिये यह आवश्यक है कि उस द्रवमें इतनी मात्रा आसवकी या हलाहलकी बन जानी चाहिये कि जिससे वह द्रव अन्यरूपमें परिवर्त्तित न हो। उसका वह रूप, स्वाद गुण न बदले। इसी उद्देश्यको लेकर आसव बनाये गये हैं, यदि वह उद्देश्य किसी बने आसवसे सिद्ध न हो तो उसका बनाना वृथा है। यद्यपि शास्त्रोंमें जहाँ पर मान नहीं दिया गया वहांके लिये एक स्टैण्डर्ड तो नियत कर ही दिया है कि—

अनुक्तमानारिष्टेपु द्रव द्रोणे तुलागुड़म् ।
क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥

अर्थात् जहांपर आसवके साथ मान मात्रा न दी हो वहां शुष्क द्रव्यसे आठगुना जल लें और उसका चतुर्थांश क्वाथ रहे। क्वाथ यदि एक द्रोण अर्थात् ५२० सेर हो तो उसमें ५६। सेर गुड़ डालें तथा गुड़से आधा शहद मिलावें। किन्तु, हम देखते हैं कि वैद्योंने इस नियमका बहुत कम पालन किया है। हर एक ग्रन्थ कारने अपना-अपना मान भिन्न ही दिया है।

क्या जिस ग्रन्थकारने वस्तुओंके साथ जल और मीठेका जो मान दिया है उसे ठीक माना जाय? यह एक विचारणीय समस्या है। कई वैद्य जो पुराने विचारके हैं, वह तो यही कहते हैं कि शास्त्र सम्मतिमें कोई ननु नच नहीं करना चाहिये। जो कुछ ग्रन्थकारने लिखा है उसी आदेशके अनुसार आसव बनाना चाहिये, नहीं तो गुणमें अन्तर आजायगा। नव्य विचारके व्यक्ति इनके इन विचारोंसे सहमत नहीं। वह कहते हैं, नहीं साहब! इन बातोंकी परीक्षा होनी चाहिये। और यह देखना चाहिये कि प्राचीन विधान और नव्य विधानसे बने आसवोंके गुणोंमें, स्वादमें और गन्धमें कोई अन्तर भी आता है या कि कोरा विश्वास ही है।

हमें किसी पक्षका समर्थन करनेसे पूर्व देखना चाहिये कि आसव निर्म्माणका उद्देश्य क्या है? तथा उस उद्देश्यकी सफलताके लिये क्या-क्या बातें करनी आवश्यक होती हैं। जब विचारवान् इस तथ्यको समझ लेता है तो फिर आग्रहके लिये अवसर नहीं रह जाता। इसीलिये हम यहां पर एक-एक बातों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) पहिली बात तो यह है कि ग्रन्थकारोंका आसव बनानेमें मुख्य उद्देश्य तो यह था कि औषधिके गुण, धर्म द्रव रूपमें भी स्थिर बने रहें। दूसरे वह द्रव भी किसी एक निश्चित रूपमें ही बना रहे। इसी उद्देश्यको लेकर आसव बनाये गये। अब देखना तो यहां पर यह बाकी रह जाता है कि यदि किसी आसवमें जिसमें जलकी मात्रा थोड़ी है, यदि हम बढ़ादें तो उसके बढ़ानेसे आसव बनानेका उद्देश्य तो नष्ट नहीं हो जाता? कहीं उसके गुणोंमें परिवर्त्तन तो नहीं आता। यदि आसव बनानेका उद्देश्य नष्ट हो जाय, औषधके गुणोंमें परिवर्त्तन आजाय तो ऐसी दशामें कुछ भी परिवर्त्तन करना उचित नहीं। फिर तो शास्त्र विधिसे ही बनाना चाहिये।

जलकी अधिकताका क्या प्रभाव होता है?

जलका मुख्य काम है औषधके अंशको अपनेमें घुलालेना। जल घोलक है। किन्तु, हम किसी ऐसे द्रव्यमें—जो देरमें या कठिनतासे घुलने वाला हो—जलकी मात्रा थोड़ी डालें तो यह निश्चित बात है कि जलकी कमीसे उस द्रव्यके अनेक अंश जलमें नहीं घुलेंगे। वह जैसे के तैसे रह जाँयगे। जब जलकी कमीसे समस्त अंश न घुले, रह जाँय, तो यह लाभकी बात न हुई, प्रत्युत् हानिकी हुई। जलकी अधिकतासे उस औषधके गुणोंमें परिवर्त्तन आ ही नहीं सकता, यह निश्चित बात है। हाँ एक बात अवश्य है कि यदि किसी आसवमें लिखे विधानसे जल-ज्यादा डाला जाय तो पाठक यही कहेंगे न, कि यह आसव पतला है; इसलिये इसकी मात्रा अधिक दी जायगी। जहाँ दो तोला देते हैं वहाँ इसे चार तोला पीना पड़ेगा। यह कोई इतनी भारी त्रुटि नहीं। मात्राधिक्यता ऐसा दोष नहीं जो औषध पर प्रभाव डालता

हो। प्रत्युत जलकी कमीसे अवश्य औषधके अंश घुलनेसे रह सकते हैं। जब यव-कूट औषधके अंश न घुलें तो आसव पूर्ण गुण युक्त नहीं हो सकता। इसलिये, यदि जलकी मात्रा कम हो तो बढ़ानेसे लाभ ही है, हानि कोई नहीं। आसवोंमें कितना जल होना चाहिये? समस्त आसवोंकी औषधियाँ एक जैसी नहीं होतीं। किसीमें त्वक्, मूल आदि अधिक होते हैं, कइयोंमें इनकी मात्रा बहुत ही न्यून होती है, त्वक् मूलादि द्रव्योंमें तो अवश्य ही क्राथके समय इतना जल होना चाहिये कि समस्त अंश उसका घुलकर जलमें आ जाय। किन्तु, द्राक्षासव जैसे में अधिक जलकी आवश्यकता नहीं। इसमें तो मात्राके अनुसार ही जल देना चाहिये। किसी ऐसे आसवमें जिसमें काष्ठौषधियाँ अधिक हों, आठ गुने जलसे कम नहीं लेना चाहिये। द्राक्षासवमें चौगुना और कुमार्यासवमें बराबरका जल डालना चाहिये। द्राक्षा जलमें जल्दी गल जाती है इसको पंचमांश या चतुर्थांश शेष करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। जहाँ द्राक्षा गली, उतार कर मथ डालना या तोड़ डालना चाहिये। द्राक्षा ऐसी चीज़ नहीं जिसका घुलना कठिन हो। कुमार्यासवमें जल डालनेका विधान नहीं है, न उसे पकानेका विधान पाया जाता है। किन्तु, अनुभवसे देखा गया है कि कुमारीपत्रसे छील छीलकर गूदा निकालनेकी अपेक्षा बराबर जल मिलाकर उसे उबालें तो उसका गूदा गलकर द्रवरूपमें आ जाता है। ऊपरका छिलका गलकर भिन्न हो जाता है, उसमें फिर प्रक्षेप द्रव्य डाले जाँय तो वह उसमें भीग भी जाते हैं, तथा उनका घुलनशील अंश घुल भी जाता है। यदि ऐसा न करें, कुमारी गूदा निकालकर डालें तो न प्रक्षेप द्रव्य अच्छी तरह घुलते हैं, न सन्धान ही ठीक उठता है। मीठेका

घोलना भी उसमें कठिन होता है। कुमार्यासव इसीलिये कई वैद्योंका ठीक नहीं बनता। वह कुमारीपत्रको पकाकर नहीं डालते। हर अवस्थामें प्रत्येक आसवमें जलकी मात्रा इतनी होनी चाहिये कि क्वाथ पतला रहे, जिसमें कि मीठा मिलाने पर भी वह गाढ़ा न हो तभी सन्धान ठीक-ठीक होगा। यदि सन्धान ठीक न हुआ, आसवकी मात्रा उसमें कम बनी तो आसवका सुरक्षित रहना कठिन हो जायगा। आसवमें कमसे कम दस प्रतिशतसे कम हलाहल नहीं बनना चाहिये। इस बातकी ओर वैद्योंका ध्यान अवश्य रहना चाहिये। जलकी कमी जहाँ होगी वहाँ हलाहलकी मात्रा कभी पूरी नहीं बन सकती। क्योंकि, उसमें मीठेको खपानेकी अधिक शक्ति नहीं होती। जितना अधिक मीठा खपेगा उतना ही अधिक हलाहल बनेगा। जितना कम मीठा पड़ेगा उतना ही कम हलाहल बनेगा। हलाहल या आसवके बननेका कारण मीठा है, आधार जल है। जलकी उचित तरलता होगी तभी मीठा आसवमें बदलेगा। इसलिये जलकी ओर वैद्योंका ध्यान अवश्य रहना ही चाहिये।

आसवके लिये क्वाथ द्रव्य कैसे होने चाहियें ?

हमारे शास्त्रोंका आदेश तो यह है, कि औषधको यवकूट बनाकर उनका क्वाथ करनेसे उसका अंश भाग क्वाथमें आ जाता है। परीक्षाओंसे देखा गया है कि जिन यवकूट द्रव्योंका क्वाथ करके उनको क्वाथसे भिन्न कर लिया है उसे फिर पीसकर क्वाथ किया जाय तो उसमेंसे फिर काफी द्रव्यांश जलमें घुल जाता है और उसका घोल भी उस पहिले घोलसे कुछ कम अन्तर वाला बनता है। यही नहीं, उस क्वाथ अवशिष्ट द्रव्यको पीसकर हला-

हो। प्रत्युत जलकी कमीसे अवश्य औषधके अंश घुलनेसे रह सकते हैं। जब यव-कूट औषधके अंश न घुलें तो आसव पूर्ण गुण युक्त नहीं हो सकता। इसलिये, यदि जलकी मात्रा कम हो तो बढ़ानेसे लाभ ही है, हानि कोई नहीं। आसवोंमें कितना जल होना चाहिये? समस्त आसवोंकी औषधियाँ एक जैसी नहीं होतीं। किसीमें त्वक्, मूल आदि अधिक होते हैं, कइयोंमें इनकी मात्रा बहुत ही न्यून होती है, त्वक् मूलादि द्रव्योंमें तो अवश्य ही क्राथके समय इतना जल होना चाहिये कि समस्त अंश उसका घुलकर जलमें आ जाय। किन्तु, द्राक्षासव जैसे में अधिक जलकी आवश्यकता नहीं। इसमें तो मात्राके अनुसार ही जल देना चाहिये। किसी ऐसे आसवमें जिसमें काष्ठौषधियाँ अधिक हों, आठ गुने जलसे कम नहीं लेना चाहिये। द्राक्षा-सवमें चौगुना और कुमार्यासवमें बराबरका जल डालना चाहिये। द्राक्षा जलमें जल्दी गल जाती है इसको पंचमांश या चतुर्थांश शेष करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। जहाँ द्राक्षा गली, उतार कर मथ डालना या तोड़ डालना चाहिये। द्राक्षा ऐसी चीज़ नहीं जिसका घुलना कठिन हो। कुमार्यासवमें जल डालनेका विधान नहीं है, न उसे पकानेका विधान पाया जाता है। किन्तु, अनुभवसे देखा गया है कि कुमारीपत्रसे छील छीलकर गूदा निकालनेकी अपेक्षा बराबर जल मिलाकर उसे उबालें तो उसका गूदा गलकर द्रवरूपमें आ जाता है। ऊपरका छिलका गलकर भिन्न हो जाता है, उसमें फिर प्रक्षेप द्रव्य डाले जाँय तो वह उसमें भीग भी जाते हैं, तथा उनका घुलनशील अंश घुल भी जाता है। यदि ऐसा न करें, कुमारी गूदा निकालकर डालें तो न प्रक्षेप द्रव्य अच्छी तरह घुलते हैं, न सन्धान ही ठीक उठता है। मीठेका

घोलना भी उसमें कठिन होता है। कुमार्यासव इसीलिये कई वैद्योंका ठीक नहीं बनता। वह कुमारीपत्रको पकाकर नहीं डालते। हर अवस्थामें प्रत्येक आसवमें जलकी मात्रा इतनी होनी चाहिये कि काथ पतला रहे, जिसमें कि मीठा मिलाने पर भी वह गाढ़ा न हो तभी सन्धान ठीक-ठीक होगा। यदि सन्धान ठीक न हुआ, आसवकी मात्रा उसमें कम बनी तो आसवका सुरक्षित रहना कठिन हो जायगा। आसवमें कमसे कम दस प्रतिशतसे कम हलाहल नहीं बनना चाहिये। इस बातकी ओर वैद्योंका ध्यान अवश्य रहना चाहिये। जलकी कमी जहाँ होगी वहाँ हलाहलकी मात्रा कभी पूरी नहीं बन सकती। क्योंकि, उसमें मीठेको खपानेकी अधिक शक्ति नहीं होती। जितना अधिक मीठा खपेगा उतना ही अधिक हलाहल बनेगा। जितना कम मीठा पड़ेगा उतना ही कम हलाहल बनेगा। हलाहल या आसवके बननेका कारण मीठा है, आधार जल है। जलकी उचित तरलता होगी तभी मीठा आसवमें बदलेगा। इसलिये जलकी ओर वैद्योंका ध्यान अवश्य रहना ही चाहिये।

आसवके लिये काथ द्रव्य कैसे होने चाहियें ?

हमारे शास्त्रोंका आदेश तो यह है, कि औषधको यवकूट बनाकर उनका काथ करनेसे उसका अंश भाग काथमें आ जाता है। परीक्षाओंसे देखा गया है कि जिन यवकूट द्रव्योंका काथ करके उनको काथसे भिन्न कर लिया है उसे फिर पीसकर काथ किया जाय तो उसमेंसे फिर काफी द्रव्यांश जलमें घुल जाता है और उसका घोल भी उस पहिले घोलसे कुछ कम अन्तर वाला बनता है। यही नहीं, उस काथ अवशिष्ट द्रव्यको पीसकर हला-

हलमें डाला गया और एक ओर उस क्वाथके मूल द्रव्यके चूर्ण भी भिन्न हलाहलमें डाले गये, दोनों ही उस हलाहलमें एक सी मात्रामें घुले। एक बार दशमूलारिष्टका अवशेष क्वाथ द्रव पुनः पिसकर उसका पुनः क्वाथ किया और उस क्वाथका आसव तय्यार किया। प्रयोग करने पर वह भी दशमूलारिष्टके लगभग वह लाभ करता दिखाई दिया। यद्यपि इसकी मात्रा कुछ अधिक देनी पड़ी। इन परीक्षाओंके आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि आसव तय्यार करनेके लिये काष्ठौषधको केवल यवकूट ही नहीं करना चाहिये, प्रत्युत उसे चूर्णरूप बनाकर पुनः प्रथम उसे इसी तरह उबले जलमें भिगो देना चाहिये। और सुबह उस जलको निचोड़कर निकाल लेना चाहिये। तत्पश्चात् और जल बराबरका डालकर फिर उसका क्वाथ मन्द-मन्द अग्नि पर करना चाहिये। और आधाजल जलने पर उसे फिर उतार शीतल कर छान लेना चाहिये। इसके पश्चात् तीसरी बार पुनः और बराबरका जल डालकर तीव्र अग्नि पर उसका क्वाथ पकाना चाहिये। और आधेसे अधिक जलके जलने पर पुनः उतार शीतल कर छान लेना चाहिये। इन तीनों ही जलों को एकत्र कर उसमें पुनः वारीक प्रक्षिप्त द्रव्य जिन्हें प्रथम दिन चूर्ण करके जलमें भिगो दिया हो—अगले दिन अच्छी तरह बारीक पीसकर उनका कल्क बनाय उस जलमें घोल देना चाहिये। तत्पश्चात् मीठा व किण्व डाल कर सन्धानार्थ रख देना चाहिये। इस प्रक्रियासे बने आसवोंमें वनस्पतियोंका उद्वायी, अनुद्वायी तैलांश व गुणदायी अंश सब जलमें आ जाता है और आसव अच्छा सुगन्ध युक्त, गुणयुक्त बनता है। इस समय जितने भी विलायती टिंकचर बनाये जाते हैं, सब औषधको बारीक चूर्णरूप करके

ही बनाये जाते हैं जिससे उसके रेशे रेशेमें हलाहल विंधकर उसके सारांशको अपनेमें घुला लेता है। उनकी थोड़ी औषधसे जितना अधिक गुणदायी अंश हलाहलमें आजाता है, हमारा उससे आठगुनी औषध लेने पर भी उतना गुणदायी अंश नहीं निकल पाता। इसका मुख्य कारण है, औषधका मोटा कुटा रहना। दूसरे जलमें उसके समस्त गुणदायी अंशका न घुलना।

यह परीक्षा सिद्ध बात है कि जलमें वनस्पतियोंके अनेक अंश नहीं घुलते, जो अंश जलमें नहीं घुलते, वह अंश हलाहलमें घुल जाते हैं। जब हम केवल जलमें ही घोलकर औषधका गुण-दायी अंश निकालना चाहें तो यह कब सम्भव है कि जो अंश जलमें घुलन शील नहीं, वह किस तरह घुल सकता है? हमें आसव बनाते समय इन बातोंमें भी सुधार करनेकी आवश्यकता है। यदि आप यवकूटके स्थल पर आसवमें चूर्ण करके औषध डालने लगेंगे, तथा ऊपर बताई विधिसे उसका भिन्न-भिन्न रीतिसे जलांश ग्रहण करेगें तो आपको दिखाई देगा कि वह आसव पूर्वकी अपेक्षा अधिक गुणदायी है।

जिनमें मीठा नहीं डाला जाता क्या उन्हें आसव कहा जा सकता है? हमें कुछ ग्रन्थोंमें ऐसे आसवारिष्ट नामके योग मिलते हैं जिनमें मीठा डालना नहीं लिखा, यथा—चरकका कनकबिन्दु अरिष्ट, गदनिग्रहका आवर्त्तक्याद्यासव। इन नाम धारी आसवा-रिष्टोंको जबतक उनमें मीठा डालकर उठाया न जाय और उनमें आसव उत्पन्न न हो तबतक उन्हें आसव संज्ञा देना आसवीय सिद्धान्तके विरुद्ध बात है।

आजकलके टिंक्चर जो हलाहलमें न बनाये गये हों, उन्हें न तो कोई टिंक्चर कहेगा, न उसपर राजकीय बाधा होगी, इसी

तरह जिसमें आसव या हलाहल न विद्यमान हो उसको आसव न कह कर काथ ही कहना चाहिये। चाहे वह ताज़े बनाकर दिये जाँय या रखकर। आसव संज्ञा उनको तभी देनी चाहिये जब उनके भीतर आसव विद्यमान हो।

क्या तक्र व अम्लसे बने भी आसव हो सकते हैं ?

चरकमें दिया तक्रारिष्ट और गदनिग्रहमें दिया पंचमूत्रासव या जम्बीरासव, इन्हें भी आसव नहीं कहा जा सकता। तक्रारिष्टमें भी आसव नहीं होता प्रत्युत दुग्धाम्ल या दध्याम्ल (Lactic Acid) होता है। यही दध्याम्ल ही उसमें बना रहता है। पंचमूत्रासवमें न तो मीठा पड़ता है, न वह किसी और रूपमें परिवर्त्तित होता है। इसमें मूत्राम्ल अवश्य होता है। इसलिये इनको आसव न कहकर तक्राम्ल और मूत्राम्ल कहने चाहिये। तथा इन्हें आसवोंमें स्थान नहीं मिलना चाहिये। यदि पीछे इन्हें आसवमें रखकर भूलकी गई है तो हमें उसका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

क्या कांजी और सिरका आसव हैं ?

आरनाल (कांजी) और सुक्तया-चुक्र (सिरका) इन दोनों ही में आसव नहीं होता। आरनाल राई पीसकर डालनेसे बनता है। यह सुक्ताम्ल चुक्राम्ल या सिरकासे भिन्न पदार्थ हैं। दोनों एक चीज़ नहीं। आरनाल आसवसे नहीं बनता। वह सीधे राईके डालनेसे उठता है। चुक्र या सुक्त आसवमें विकृति उत्पन्न होनेसे बनता है। इन दोनोंके अम्ल भिन्न-भिन्न हैं तथा इनका रसायनिक सूत्र भिन्न-भिन्न हैं। यह दोनों भी आसवके साथ नहीं रखे जा सकते। क्योंकि न तो आसव जैसा इनका

रूप होता है, न गुण, स्वभाव, न स्वाद ही। इसीलिये इनका भी आसवसे भिन्न स्थान पर ही उल्लेख होना चाहिये।

आसव निर्माणके लिये आवश्यक बातें।

स्थान और ऋतु—आसव यदि शीत कालमें बनाना हो—पौष, माघमें—और मिट्टीके या चीनीके बर्त्तनमें बनाना हो तो उसे धान्य तुष (भूसा) या अन्नराशि (गेहूँ, चना, धान, जौ) के ढेरमें पात्रको गले तक दबा देना चाहिये। पात्रका मुँह उस धान्य राशिसे ऊपर रहे इस बातका ख्याल रखना चाहिये। यदि लकड़ीके ढोलमें बनाना हो तो उसे भूमिमें गढ़ा खोदकर उसमें गले तक उतार देना चाहिये और उस पात्रके आसपास भूसा या बोरी वगैरह भर देने चाहिये।

यदि फाल्गुण, चैत्र, वैशाखका महीना हो या आश्विन, कार्त्तिकका महीना हो तो उक्त पात्रोंको धान्य राशि या भूमिमें दबानेकी कोई आवश्यकता नहीं। बाहर ही खुले स्थानमें रखकर उसमें आसव उठा सकते हैं।

स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ हवाका तो काफी प्रवेश होता रहे, किन्तु वहां मक्खी, मच्छर वगैरह न जा सकें।

गर्मियोंमें या वर्षाकालमें आसव बनाना बिना उत्तम प्रबन्धके उचित नहीं। गर्मी व वर्षाकालमें उत्तापकी अधिकता रहती है। बाह्य गर्मीके प्रभावसे आसवमें सन्धानकार्य आरम्भ होते ही उस द्रवमें इतनी गर्मी बढ़ जाती है कि किएव-कीटाणु फौरन मर जाते हैं। इसीलिये या तो अत्यन्त ठण्ढी कोठरी बनानी चाहिये या शीतल जल वाही नलको उस पात्रमेंसे होकर गुजारना चाहिये या बरफको पोटली रबड़की थैलियोंमें भरकर डालना चाहिये।

और आसव द्रवका उत्ताप ५०–६५ डिग्रीसे अधिक नहीं बढ़ने देना चाहिये, तभी आसव अच्छे बन सकते हैं। अन्यथा बिगड़ जाँयगे, या बननेसे रह जाँयगे। १½ सेर मीठा ८–१० सेर द्रवमें पड़ा हो और उसमें किण्व डाला गया हो तो वह ४८ घंटेमें आसवमें परिणत हो जाना चाहिये। इसकेलिये ज्यादासे ज्यादा-सर्दीके दिनोंमें—४ दिन लगजाते हैं। किन्तु, गर्मियोंमें ठीक तौर पर दो दिनसे कम समयमें नहीं बनता। यदि सन्धान आरम्भ होकर एकाएक बन्द हो जाय तो अवश्य कोई गड़बड़ हुई है, ऐसा समझना चाहिये। या तो मीठा समाप्त होगया है, या गर्मी बढ़कर उसका कार्य बन्द हो गया है। यही दो कारण होते हैं। यदि मीठा समाप्त हो गया हो तो उस बनने वाले आसवका ज़रासा द्रव निकाल कर उसका स्वाद लेना चाहिये। यदि मीठा समाप्त होने पर आसवका सन्धान-क्रम बन्द हुआ होगा तो उस द्रवका स्वाद कुछ चरपरा कटुता लिये होगा। मिठासका उसमें नाम तक न होगा। यदि गर्मीके कारण सन्धान रुका होगा तो मीठाका स्वाद बराबर आवेगा। यदि गर्मीके कारण आसवका सन्धान रुक गया हो तो उस द्रवको इतना ठण्ढा करना चाहिये कि उसकी गर्मी ४०-५० डिग्रीके लगभग हो जाय या इससे भी कम। फिर उसमें और किण्व डालना चाहिये, तब नये सिरेसे उसमें सन्धान हो सकता है। इस तरह नहीं। जब आसव सन्धान बन्द होने लगे और स्वाद लेकर देखा जाय उसमें मीठाका स्वाद न आवे तो द्रवसे अष्टम भागके लगभग और खांड या शहद मिला दें। इससे फिर नये सिरेसे सन्धान होकर आसव बनने लगेगा। दो तीन बार इस तरह मीठा डालने पर जब अपनी पूर्णमात्रा तक आसव बन जायगा, द्रवमें मीठा बना रहने पर भी सन्धानका काम रुक जायगा। तीन दिन

या चार दिन तक इसकी प्रतीक्षा करें। इतने अवसरमें ऊपर जो धातकी पुष्प तथा अन्य काथांश तिरते होंगे वे नीचे बैठने लगें। बस, उस समय ही या उससे दो तीन दिन बाद छानलें।

और मीठा मिलाना—छाननेसे पूर्व या छाननेके पश्चात् उस—आसवमें इतना मीठा और मिलादें ताकि उसका स्वाद अच्छा हो जाय। इसके लिये चतुर्थांश या पंचमांश मीठा काफी होता है। इस मीठा मिलानेसे आसवमें अन्य परिवर्त्तन जल्दी नहीं आते। यदि द्रवका आधा भी मीठा और डाल दें तब भी किसी किस्मकी हानिका भय नहीं होता।

पात्र—आसव काथ उबालनेके लिये या तो मिट्टीका पात्र होना चाहिये, या ताम्र पात्र जिसपर कलईकी हो।

आसवको रखनेके लिये भी मिट्टी, चीनी, कांच व लकड़ीके ढोल जो मिल सकते हों सुविधानुसार ले सकते हैं। किन्तु मिट्टीका पात्र जिसमें एक बार दो चार मास पूर्व आसव बनाया था उसको प्रथम तो लेना ही नहीं चाहिये। यदि लिया भी जाय, तो प्रथम उसमें कास्टिकसोडा डालकर गरम पानीसे भरकर दो तीन दिन रक्खा रहने देना चाहिये। इस तरह करने पर जितनी खटाई होती है सब नष्ट होकर घड़ा शुद्ध हो जाता है। लकड़ीके ढोल लेते समय भी यही प्रक्रिया करनी चाहिये। हमारे यहाँ वर्त्तनको अगरू, चन्दन, जटामाँसी, कपूर, गुग्गुल आदिसे प्रथमधूपित करते थे। धूपित करनेका भी अभिप्राय पात्रको शुद्ध करना है। जब पात्र शुद्ध हो जाय तो उसको यथा स्थान रखकर पात्रका आधा भाग आसव द्रवसे भर देना चाहिये, आधा खाली रहने देना चाहिये। बड़े वर्त्तन तीन भाग तक भरे जांय तो भी ठीक है। फिर उसमें अष्टमांस खाँड और प्रक्षेप द्रव्य घोल देना चाहिये। यदि शीतकाल हो तो उस

काथको गुनगुना (साधारण गरम) करलेना चाहिये, तब पात्रमें भरना चाहिये। जब मीठा और प्रक्षिप्त द्रव्य घुलजावे तो उसमें छटाँक आधपाव या इससे भी अधिक किण्व छोड़देना चाहिये। किण्व (yeast) यदि विलायती शुद्धरूपमें हो तो ६ माशे, तोला ही काफ़ी है। नहीं तो अच्छे आसवकी गाद ही उसमें डालदें, वह भी किण्वका काम दे देगी। उसमें धावेके फूल न भी डाले जाँय तब भी कोई हर्ज नहीं।

पात्रको ढकना—पात्रको चपनी या ढकना आदिसे बन्द करना नहीं चाहिये; प्रत्युत उसके मुँह पर कपड़ा बांध देना चाहिये ताकि उसके अन्दर मक्खी, मच्छर न जा सकें। किसी ढकनसे कसकर मुँह बन्द करना महा त्रुटि है। हवा उसके भीतर ज़रूर आनी जानी चाहिये।

पात्रको क्यों खुला रखना चाहिये ? जब आसवमें ख़मीर उठता है तो उस समय एक ओर आसव बनता है, तो दूसरी ओर कज्जलद्विउष्मिद नामक वायु बनता है। यदि पात्रका मुँह खुला हो तो वह कज्जलद्विउष्मिद वायु बाहर निकलता रहता है। कपड़ा उसके लिये बाधक नहीं होता। जैसे जैसे यह वायु निकलता रहता है उसके साथ ही दूसरी ओर हवा उसमें पहुँचता रहता है, हवाके जाने और वायुके निकलनेसे सन्धानका काम ज़ोरोंसे चलता रहता है। उस समय कितनी भी सर्दी हो सन्धानके कारण पात्रमें गर्मी घटती नहीं। बाहरकी शीतल हवा उसको शीतल नहीं कर सकती। जब पात्रमें सन्धान हो रहा हो आसव द्रव सदा नीचे ऊपर अपने आप होता रहता है। जब उसमें सन्धानका काम कम हो जाय, मीठेकी मात्रा जाती रहे तो और खाँड डाल देनी चाहिये। इस तरह १ मन आसव द्रव कोई १०–१२ दिनमें तय्यार हो जाता है।

छानना—आसव जब तय्यार हो जाय ऊपरका औषधांश नीचे बैठने लगे उसी समय उसको छान लेना चाहिये। बहुत समय तक पड़े-पड़े खुले बर्त्तनोंमें डालकर नहीं छानना चाहिये, न क्रियात्मक आयुर्वेदके पृष्ठ ६८ पर दिये चित्रके अनुसार यन्त्रको जाली दार बनाकर छानना चाहिये। इसतरह खुला हुआ आसव जितनी अधिक देर पड़ा-पड़ा हवामें छनता रहता है हवाके स्पर्शसे आसव सिरकामें बदलता रहता है। उसकी परीक्षा लिटमसपेपरसे आसव छाननेसे पूर्व और पीछे ली जा सकती है। दूसरे लोहासव और कुमार्यासव जैसे आसव काले पड़ते चले जाते हैं।

विलायती फिल्टरोंमें छानना हो तो बन्द बर्त्तनके टूंटीदार चीनीके फिल्टरोंमें छानना चाहिये जिसमें हवाका प्रवेश नहीं होने पाता।

देसी तरीकेसे छाननेके लिये मोटे कपड़ेमेंसे छान-छान कर साथ ही साथ मीठा मिलाकर बोतलोंमें या चीनीके बर्त्तनोंमें भरते चले जाना चाहिये और बर्त्तनका मुँह खूब अच्छी तरह साथ ही साथ बन्द करते चले जाना चाहिये। ढोलोंमें भी भरते समय मुँहामुँह भरकर अच्छी तरह डाटसे बन्द कर देने चाहियें। यदि सन्धान क्रिया समाप्त हो चुकी हो तो फिर इस तरह बन्द कर देने पर आसवके उबलने या उफननेका कोई भय नहीं रहता। छोटे बर्त्तन कभी मुँहामुँह नहीं भरने चाहियें, उनमें थोड़ा स्थान खाली छोड़ देना चाहिये।

स्वच्छता—आसव बनाना, आरम्भ करके छानने तक स्वच्छताकी ओर खूब ध्यान रखना चाहिये। स्वच्छतासे अभिप्राय है जिस पात्रमें काढ़ा बने वह अच्छी तरह साफ हो, उनमें खटा

सिरकाका लेश न हो। औषधियाँ साफ सुथरी हों, जिस अमाम-दस्तेमें कूटी जायँ उसमें किसी प्रकारकी खटाईकी लाग न लगी हो। फिर जिस स्थानपर आसवपात्र रक्खा हो उस कोठरीमें सिरका या कोई अचार नहीं होना चाहिये। मक्खी, मच्छर आसव द्रवमें नहीं बैठने चाहियें। मीठा भी स्वच्छ और साफ होना चाहिये। गुड़से बनी खाँड नहीं डालनी चाहिये। शहद पतला, बुरी गन्ध-युक्त न पड़ने पावे। किण्व भी अच्छा हो या कहीं खट्टाजगल न हो गया हो। फिर छानने के समय ऐसे स्थानपर आसव छने जहाँ गर्दागुबार उड़कर न आ रहा हो। मक्खियाँ न भिनकती हों। वस्त्र और हाथ जब आसवको लगाये जायँ, साफ करके साबुनसे धोकर लगाये जायँ। जभी आसव सुरक्षित रह सकता है, अन्य विधिसे नहीं।

आसवमें लोह व स्वर्ण डालना।

हमारे यहाँ आसवमें लोह चूर्णके रूपमें और स्वर्णपत्रके रूपमें डालनेका आदेश आया है, किन्तु प्रयोगोंसे देखा जाता है कि न तो इस तरह लोह ही घुलता है न स्वर्ण। लोहका कोई घुलनशील तथा स्वर्णका घुलनशील यौगिक बना लिया जाय तो वह आसवमें डालनेपर उसमें स्थिर रह सकता है, तथा उसका लाभ है। हम तो लोहासव व कुमार्यासवमें त्रिफला क्वाथमें पड़ा लोह जो घुल जाता है वह डालते हैं, तथा वह उसमें घुल मिल जाता है। कसीस भी लोह गन्धकका यौगिक है। यह भी पानीमें तथा आसवमें घुल जाता है किन्तु इसे डालना हो तो लोहकी मात्रासे अष्टमांश ही डालना चाहिये। अंगरेज़ीका एक लोह यौगिक फेरीक्युनैन साइट्रास भी घुलनशील लोह यौगिक है। इसके डालनेसे भी आसव काफ़ी गुण युक्त देखा जाता है।

स्वर्ण इस तरह आसवमें नहीं घुलता किन्तु इसे अम्लराज (३ भाग निमकका तेज़ाब तथा १ भाग शोरेका तेजाब मिलेको अम्लराज कहते हैं) में डालें तो घुल जाता है। एक शीशीमें प्रथम स्वर्ण डालकर उसमें थोड़ा थोड़ा उक्त अम्लराज डालते रहें, जब स्वर्ण सारा घुल जाय तो उक्त शीशीमें हीराकसीसकी डली थोड़ी थोड़ी करके डालते चले जायँ। जब हीराकसीस उस तेज़ाबमें घुलने लगेगा तो स्वर्ण नीचे बैठता चला जायगा। जब कसीसका रवा उसमें डालनेपर न घुले तो एक दिनके लिये शीशी को उसी तरह उठाकर रख दें, सुबह ऊपर ऊपरसे तेज़ाब दूसरी शीशीमें डाल लें, नीचे बैठा हुआ स्वर्ण परिश्रुत पानी डालकर धोवें, जब तेज़ावी असर जाता रहे उसे निकालकर सुखा लें, वह सारस्वतारिष्टमें डालने पर उसमें घुल जाता है। यह अंगरेजी दुकानोंपर स्वर्ण लवणिद (Gold Chloride) के नामसे भी मिल जाता है, इसे मिला दें।

सुगन्ध द्रव्य मिलाना—सुगन्ध द्रव्य भी पीछे ही उसी आसवके द्रवमें या सञ्जीवनी सुरामें या हलीमें प्रथम घोलकर छानकर उस आसवमें डाल देना चाहिये। इसतरहसे समस्त सुगन्धित द्रव्य कस्तूरी, केसर आदि समस्त आसवमें फैल जाते हैं।

आसव परिश्रुत करना और राज्य नियम।

हम पीछे बतला चुके हैं कि आसवको परिश्रुत करनेकी या भट्टी पर चढ़ाकर चुवानेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि परीक्षाओंसे देखा गया है कि परिश्रुत करलेने पर फिर आसवमें औषधियोंका समस्त गुणदायी भाग उसके साथ उड़कर नहीं आता। बहुत साधारणसा वनस्पतियोंका उड्डायी तेल तथा हलाहल या जल ही

उड़कर आता है। इसपरिश्रुत आसवमें मद्यके ही प्रायः गुण पाये जाते हैं, औषधियोंके गुण इसमें नहीं मिलते।

इससे पहिले संस्करणमें मैंने लिखा था कि परिश्रुत किये आसव एक तो निर्मल रहते हैं, बिगड़नेकी सम्भावना नहीं रहती। दूसरे यह सदा पूर्ण गुण युक्त होते हैं। परीक्षासे यह अन्तिम बात नहीं पाई गई। अर्थात् उड़ाने या चुवाने पर औषधके समस्त अंश उड़ कर न आनेसे वह उतना उपयोगी नहीं होता, जितना बिना परिश्रुत किया हुआ। इसीलिये कोई भी आसव यदि उसके असली गुणको लेना हो तो परिश्रुत नहीं करना चाहिये।

दूसरी बात—आसव परिश्रुत करनेमें राज्य नियम बाधक है। हम बिना लाइसेन्स लिये कभी परिश्रुत नहीं कर सकते। चाहे वह संजीवनीसुरा ही क्यों न हो। बिहार प्रान्तमें एक्साइज़ एक्टके अनुसार किसी परिश्रुत करनेवाली फेक्टरीके द्वारा गवर्नमेण्टसे लाइसेन्स प्राप्त करके संजीवनीसुरा निकलवा सकते हैं। किन्तु अन्यप्रान्तों में यह सुविधा भी नहीं है। यदि कोई बिना आज्ञाके चोरीसे परिश्रुत करता है तो वह राज्य नियमकी अवहेलना करता है। यदि ऐसे समय परिश्रुत करते पकड़ा जाता है तो वह राज्यदफ्तरसे दण्डित्त हो जाता है। परिश्रुत आसव तो हम एक बोतलसे अधिक नहीं रख सकते।

उत्तरार्द्ध

आसव-योग-संग्रह

१—अभयारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

मूलद्रव्य—बड़ी हरड़ ऽ५, मुनक्का ऽ२॥, वायविडंग, महुवा का फूल आध २ सेर। क्काथजल १॥ऽ शेष क्काथ ॥ऽ

प्रक्षेपद्रव्य—खाँड ऽ१० सेर, गोखरू, निसोत, धनियाँ, इन्द्रायण, चव्य, मुलहटी, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस सब दस दस तोला, धावेके फूल ऽ। मोठा दो दफा करके डालें।

गुण—यह आसव साधारण रेचक व मलसारक है, प्रायः जब विष्टब्धताकी शिकायत रहती हो, मल साफ न आता हो या थोड़ा-थोड़ा कटवाँ मल आता हो, विष्टब्धताके कारण मूत्रमें जलन होती हो, उदरविकारसे मूत्रकी मात्रा कम हो गई हो तो इसके सेवनसे लाभ होता है। इसके सेवनसे आध्मान, पेटकी गड़-गड़ाहट, पेटदर्द, बवासीर, अग्निमांद्य, अम्लपित्त आदि अनेक पेटकी बीमारियोंमें लाभ होता है।

मात्रा २ से ४ तोला तक रात्रीको भोजनके पश्चात् दें।

२—अभयारिष्ट (चरक चि० अ० १४)

मूलद्रव्य—बड़ी हरड़ ऽ॥ आँवला ऽ१ कैथका पका फल ऽ॥= इन्द्रायणमूल ऽ।–

उड़कर आता है। इसपरिश्रुत आसवमें मद्यके ही प्रायः गुण पाये जाते हैं, औषधियोंके गुण इसमें नहीं मिलते।

इससे पहिले संस्करणमें मैंने लिखा था कि परिश्रुत किये आसव एक तो निर्मल रहते हैं, बिगड़नेकी सम्भावना नहीं रहती। दूसरे यह सदा पूर्ण गुण युक्त होते हैं। परीक्षासे यह अन्तिम बात नहीं पाई गई। अर्थात् उड़ाने या चुवाने पर औषधके समस्त अंश उड़ कर न आनेसे वह उतना उपयोगी नहीं होता, जितना बिना परिश्रुत किया हुआ। इसीलिये कोई भी आसव यदि उसके असली गुणको लेना हो तो परिश्रुत नहीं करना चाहिये।

दूसरी बात—आसव परिश्रुत करनेमें राज्य नियम बाधक है। हम बिना लाइसेन्स लिये कभी परिश्रुत नहीं कर सकते। चाहे वह संजीवनीसुरा ही क्यों न हो। बिहार प्रान्तमें एक्साइज़ एक्टके अनुसार किसी परिश्रुत करनेवाली फेक्टरीके द्वारा गवर्नमेण्टसे लाइसेन्स प्राप्त करके संजीवनीसुरा निकलवा सकते हैं। किन्तु अन्यप्रान्तों में यह सुविधा भी नहीं है। यदि कोई बिना आज्ञाके चोरीसे परिश्रुत करता है तो वह राज्य नियमकी अवहेलना करता है। यदि ऐसे समय परिश्रुत करते पकड़ा जाता है तो वह राज्यदफ्तरसे दण्डित हो जाता है। परिश्रुत आसव तो हम एक बोतलसे अधिक नहीं रख सकते।

उत्तरार्द्ध

आसव-योग-संग्रह

१—अभयारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

मूलद्रव्य—बड़ी हरड़ ऽ५, मुनक्का ऽ२॥, वायविडंग, महुवा का फूल आध २ सेर। क्वाथजल १॥ऽ शेष क्वाथ ॥ऽ

प्रक्षेपद्रव्य—खाँड ऽ१० सेर, गोखरू, निसोत, धनियाँ, इन्द्रायण, चव्य, मुलहटी, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस सब दस दस तोला, धावेके फूल ऽ। मीठा दो दफा करके डालें।

गुण—यह आसव साधारण रेचक व मलसारक है, प्रायः जब विष्टब्धताकी शिकायत रहती हो, मल साफ न आता हो या थोड़ा-थोड़ा कटवाँ मल आता हो, विष्टब्धताके कारण मूत्रमें जलन होती हो, उदरविकारसे मूत्रकी मात्रा कम हो गई हो तो इसके सेवनसे लाभ होता है। इसके सेवनसे आध्मान, पेटको गड़-गड़ाहट, पेटदर्द, बवासीर, अग्निमांद्य, अम्लपित्त आदि अनेक पेटकी बीमारियोंमें लाभ होता है।

मात्रा २ से ४ तोला तक रात्रीको भोजनके पश्चात् दें।

२—अभयारिष्ट (चरक चि० अ० १४)

मूलद्रव्य—बड़ी हरड़ ऽ॥ आँवला ऽ१ कैंथका पका फल ऽ॥= इन्द्रायणमूल ऽ।–

जलकी मात्रा ।।।ऽ शेष क्वाथ ऽ८ सेर ।

प्रक्षेप—वायविडंग, पीपल, लोध, मिर्च, आलूवालू हरएक दो दो छटाँक सबको जलमें पीसकर डालें। धावेके फूल ऽ। छोड़ें। मीठा ऽ५ सेर ।

नोट—शास्त्रानुसार इसमें जलकी मात्रा बहुत अधिक आती है, १६ गुनासे भी अधिक और प्रथमके अभयारिष्टमें जलकी मात्रा ७ गुनाके लगभग होती है, प्रथमका अभयारिष्ट बहुत गाढ़ा बन जाता है जिसमें सन्धान ठीक नहीं उठता, दूसरेका अत्यन्त पतला रहता है। इसीलिये दोनोंमें संशोधन किया गया है। पहिलेमें १ तुला गुड़ले, दूसरेमें २ तुला हालां कि पहिलेमें ज्यादा चाहिये था ।

दूसरे अभयारिष्टमें यदि कच्चा कपित्थ फल डाला जायगा तो आसव खराब हो जायगा, पक्का हुआ डालना चाहिये ।

गुण—बवासोर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, पेटका बायगोला, अन्यपेटके रोग, कुष्ट, शोथ, अरुचि, कामला, श्वित्र-कुष्ट, उदरकेकृमि, उदरमें बैठी हुई गांठें, रसौली, राजयक्ष्मा, ज्वर और मुँहकी झांई, आदि सब दूर करता है तथा बल बढ़ाता है अग्नि प्रदीप्त करता है वर्णको उत्तम बनाता है आदि। मात्रा—२ तोला ।

३—अभयारिष्ट (गदनिग्रह)।

हरड़ ऽ१ आंवला ऽ१ इन्द्रायणमूल, कपित्थ फल पका, पाठा, चित्रक प्रत्येक दस तोला ।

जल ऽ३० सेर क्वाथ शेष ऽ८ मीठा ऽ४ सेर ।

गुण—इसके सेवनसे संग्रहणी, बवासीर, तिल्ली, हृद्रोग, पाण्डु रोग, कामला, विषम ज्वर, श्वास, खांसी, उदावर्त नष्ट होते हैं। मात्रा २ तोला ।

नोट—२ और ३ नं० के दोनों ही योग एक हैं साधारण औषधियोंका ही अन्तर है, गुण भी एक ही से हैं।

४—अभयारिष्ट (गदनिग्रह)।

पुनर्नवामूल, दशमूल मिश्रित चूर्ण, अर्कमूल छाल, चित्रक छाल, दन्ती मूल, निसोत, रास्ना, प्रत्येक आधासेर, त्रिफला ऽ३॥ सेर (तीनों चीज़ें)। जल १॥ऽ मन अवशेष ३० सेर, मीठा १५ सेर गोमूत्र ऽ४ सेर, लोह चूर्ण ऽ२ सेर।

प्रक्षेप—वायविडंग, कूड़ा छाल, चित्रक, मिर्च, वच, कुठ, प्रत्येक १० तोला। सबको पीसकर या चूर्ण करके मिला दें। मात्रा २ तोला।

गुण—इसके सेवनसे प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ, सूजन, प्लीहा, वृद्धि, पाण्डु, गुल्म तथा अन्य उदरके रोगों में लाभ होता है।

अमृतारिष्ट (आयुर्वेद संग्रह)

गिलोय ऽ६।, दशमूल मिश्रित ऽ६। सेर। सबको १॥ऽ जलमें पकावें जब ३० सेर जल रहे उतार लें। मीठा १५ सेर।

प्रक्षेप—जीरा श्वेत ऽ१ सेर, पित्तपापड़ा १० तोला, सातला, त्रिकुटा, नागरमोथा, नागकेसर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजव प्रत्येक ५ तोला सबको पीसकर या चूर्ण करके मिला दें और संधान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—इस आसवका उपयोग प्रायः विषमज्वरों पर किया गया है, अच्छा लाभ देखा जाता है। जीर्णज्वरोंमें जब कि किसी आन्तरिक अंगकी विकृतिसे यथा यकृत, प्लीहा आदिके बढ़ने पर ज्वर बना रहता है उस हालतमें इसके सेवनसे विशेष लाभ होता है। मन्द-मन्द ज्वरके बने रहनेपर या जिसकी

टेम्प्रेचर प्रायः ९९॥ या १०० के लगभग रहती है, ऐसे रोगियों-की हरारत अपनी असली हालतपर ले आता है। मात्रा २ तोला भोजनोपरान्त।

अरविन्दासव (आयुर्वेद संग्रह)

कमल, खस, गम्भारीके फल, नीलोफर, मजीठ, इलायची-छोटी, बला, जटामांसी, नागरमोथा, अनन्तमूलबंगाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वच, कचूर, कालीनिसोत, नीलपत्र, पटोलपत्र पित्तपापड़ा, अर्जुनछाल, महुआ, मुलहटी, मुरामांसी, सब पाँच पाँच तोला, मुनक्काकाला ऽ१। सेर। जल ३० सेर, शेष क्वाथ ८ सेर, खाँड ऽ४ सेर, शहद ऽ२ सेर, धात्रेका फूल ऽ१ सेर, सन्धान करें।

गुण—बालकोंके अतिसार, तालुकंटक, दूध फेंकना, दूध न पचना, गले पड़ना (गिलायु) आदि बच्चोंकी बीमारीमें अच्छा लाभ करता है। मात्रा ३–६ माशे तक, बड़ेको १ तोला।

अशोकारिष्ट (भैषज्य रत्नावली)

अशोककी छाल ऽ६। सेर। जल १।ऽ अवशेष क्वाथ १६ सेर।

प्रक्षेपद्रव्य—कालाजीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारूहल्दी, कमल, त्रिफला, आमकी गुठली, सफेदजीरा, वांसा, चन्दन हरएक पाँच २ तोला। खाँड ऽ८ सेर, धावेके फूल ऽ१ सेर, सन्धान करें।

गुण—स्त्रियोंके गर्भाशय सम्बन्धी शोथ, गर्भाशयशोथ ग्रीवा-तथा गर्भाशयकी विद्रधि (केन्सर) गर्भाशयच्युति या गर्भाशय की शिथिलता, हिस्टीरिया तथा डिम्ब सम्बन्धी अथवा रज सम्बन्धी विकार, व शोथमें अच्छा लाभ करता है। इससे भिन्न

श्वेतप्रदर, गर्भाशय सम्बन्धी विकार या शोथसे ठहरा हुआ ज्वर, रक्तपित्त, मन्दाग्नि, अरुचि आदिमें लाभदायी है। मात्रा २ तोला।

अश्वगन्धारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

असगन्ध ऽ३ सेर, मूसली श्वेत ऽ१, मजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहटी, रास्ना, बिदारीकन्द, अर्जुनकी छाल, नागरमोथा, निसोत हर एक दस दस छटाँक। अनन्तमूल बंगाल, अनन्तमूल देशी, चन्दन दोनों, वच, चित्रकछाल, यह सब आठ आठ छटाँक। क्वाथ जल २॥ऽ मन, शेष जल ३० सेर। खाँड ऽ१० सेर, शहद ऽ ५ सेर।

प्रक्षेप—धावेके फूल ऽ१, त्रिकुटा ऽ।=, नागकेसर ऽ=, इलायची, दारचीनी, तेजपत्र, प्रियंगु पाव पाव भर। यथाविधि सन्धान करें।

गुण—हिस्टोरियामें अच्छा काम करता है। मूर्छा, मृगी, शरीरकी कृशता या शोषमें लाभदायी है। पागलपनकी उस स्थितिमें जब कि रोगी निस्तब्ध रहता हो, नींद न आती हो लाभ पहुँचाता है। बवासीर, मन्दाग्नि व स्नायविक निर्बलताको दूर करता है। मात्रा २—४ तोले तक।

अष्टशतारिष्ट (चरक चि० अ० १२)

गम्भारीफल, आँवला, मिर्चकाली, हरड़, मुनक्काकाला, पीपल, प्रत्येक ऽ६। सेर। जल १।ऽ मन, शेष क्वाथ १५ सेर। खाँड ऽ८ सेर। यथाविधि सन्धान करें।

गुण—यह शोथ, कब्ज, कफ, वायुके रोगका नाशक है, अग्नि दीपक है। मात्रा २ तोला।

अस्रहरारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

मजीठ या विजयसारगोंद (दोषीहीरा-दमउलखवीन) १० तो० कोई इसके स्थानपर लाख भी लेते हैं। मृतसंजीवनी सुरायाहली (Sirit Rectified) १० तोला। ऊपरकी चीज़को पीसकर हलीमें डाल दें और धूपमें रख दें। शीशीका मुँह बन्द रखना चाहिये। तीसरे दिन जब निथर जाय, ऊपरका द्रवभाग भिन्न कर लें।

गुण—क्षय रोगमें जब कि उरःक्षत हो जाता है, थूकके साथ खून आने लगता है, साथमें खाँसी भी होती है, ऐसी स्थितिमें देनेपर अच्छा लाभ करता है। स्त्रियोंके योनि मार्गसे जब अधिक रक्तश्राव हो रहा हो उस समय भी लाभदायी है। मात्रा १०–१५ बूँद १ तोला जलमें डालकर।

अहिफेनासव (भैषज्यरत्नावली)

अच्छी मद्य ऽ१ सेर, अफीम कच्ची ५ तोला, मुस्तक, जायफल, इन्द्रजौ, इलायची छोटी, सब एक एक तोला, सबका अच्छी तरह चूर्ण करके अफीमको प्रथम ऽ– ऽ–॥ उष्ण जलमें घोल लें और कपड़ेमें छानकर या चुवाकर उसे उस मद्यमें डाल दें और उक्त चूर्णको भी उसमें डालकर तीन दिन धूपमें रख दें। नित्य एक दो बार हिला दिया करें। पुनः उसे दुबारा फिल्टर पेपरमें छानकर बोतलमें भर रक्खें।

इसे एक मास दबानेकी आवश्यकता नहीं।

मात्रा—१०–१५ बूँद सौंफके अर्क या जलमें डालकर दें।

गुण—विशूचिका, जीर्ण अतिसार व वेगवान् अतिसारमें लाभकारी है।

आवर्त्तक्याद्यासव (गदनिग्रह)

सनाय ऽ॥, एलवा ७॥ तोला, मस्तगी २॥ तोला, रेवंदचीनी २॥ तोला। मस्तगी, एलवाको छोड़कर सनाय, रेवंदचीनीको ऽ८ सेर जलमें पकावें, जब आधा जल रहे उतार छानकर इसमें ऽ॥ सेर खाँड तथा थोड़ासा किएव और मस्तगी चूर्ण व एलवा डालकर सन्धानार्थ रख दें। सन्धान समाप्तिपर आवे तो पुनः ऽ॥ खाँड और डाल दें। जब तय्यार हो जाय तो इसमें २ सेर खाँड डालकर रख लें।

मात्रा—१–२ तोला। जलमें मिलाकर।

गुण—कमरके दर्दको नष्ट करता है तथा दाद, चम्बलको दो मास सेवन करनेसे लाभ करता है।

उशीरासव (भैषज्यरत्नावली)

खस, सुगन्धवाला, लाल कमल, खम्भारी, नीलोफर, प्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, धमासा, पाठा, चिरायता, वटजटा, गूलर-छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेदकमल, पटोलपत्र, कचनार, जामुन, मोचरस, प्रत्येक ५ तोला। सबका बारीक चूर्ण कर लें। मुनक्का ऽ१ सेर, धावेके फूल ऽ१, जल ऽ१६ सेर, खाँड ऽ४ शहद ऽ२ सेर। प्रथम चार सेर उष्ण जलमें सब चीजोंको रात्रीमें भिगो दें। सुबह मलकर वह जल निचोड़ लें। फिर और उष्णजल ऽ२ सेर डालकर एक रात्री पड़ा रहने दें। यह जल भी अगले दिन मलकर निचोड़ लें। पश्चात् ऽ१० सेर जल डालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर समस्त जल एकत्र कर इसमें चौथाई खाँड डालकर किएव मिला

सन्धानार्थ रख दें। जब मीठा समाप्त हो जाय तो और मीठा डाल दें। जब समस्त मीठा हलीमें बदल जाय तो और मीठा या शहद डाल दें। अन्तमें सारा मीठा डालकर छान लें।

मात्रा—२ तोला। भोजनके पश्चात्।

गुण—यह आसव रक्तपित्त, पाण्डु, साधारण कुष्ट, प्रमेह, अर्श, उदरकृमि और शोथमें लाभदायो है।

एलाद्यारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

बड़ी इलायची ऽ१=, बांसाछाल ऽ१।, मजोठ, इन्द्रजौ, दन्तीमूल, गिलोय, हल्दी, दारूहल्दी, रास्ना, खस, मुलहटी, सिरसकी छाल, खैरछाल, अर्जुनछाल, चिरायता, नीमकी छाल, चित्रकछाल, कुठ, सौंफ प्रत्येक दस छटाँक।

क्वाथ जल १½ मन, अवशेष जल २० सेर।

प्रक्षेप—धावेके फूल ऽ१, दालचीनो, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, त्रिकुटा, चन्दन दोनों, बालछड़, मुरामांसी, नागरमोथा, छड़ीला, अनन्तमूल, दोनों प्रयेक पाँच तोला। सबको बारीक पीस कल्क बनाय डालें। शहद ऽ१० सेर, ढाई २ सेर करके डालें।

गुण—विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, उदर्द विस्फोट तथा विषम ज्वरमें लाभदायी है।

(१) कनकारिष्ट (चरक चि० अ० १४)

अच्छे आँवले ऽ६।, पीपल, वायविडंग, मिर्चकाली, नागकेसर, प्रत्येक पावभर। जवासा, पीपरामूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, मजोठ, एलवालुक, लोध प्रत्येक पाँच तोला। कुठ, दारुहल्दी, देवदारू, अनन्तमूल दोनों, नागरमोथा, इन्द्रजौ प्रत्येक ढाई ढाई तोला।

जल १॥ऽ मन अवशेष १५ सेर।

मुनक्का ऽ८ सेर, इसको १६ सेर जलमें पकावें, जब गल जाँय उतार मल कर उक्त क्वाथमें डालें।

प्रक्षेप—खाँड ऽ८ सेर, शहद ऽ२ सेर। दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागरमोथा, सुगन्धबाला, खस, सुपारी, नागकेसर हर एक तोला २ कल्क करके बारीक पीसकर किण्व सहित मिला दें। मीठा क्रम क्रमसे डालें। इसमें प्रथम मीठा बिल्कुल न डालें। क्योंकि मुनक्काका मीठा इसमें विद्यमान है, वह विलीन हो जाय तब और मीठा डालें। तय्यार होनेपर छान रक्खें।

गुण—बवासीर, संग्रहणी, अफारा, उदररोग, गंज, ज्वर, हृदयरोग, पाण्डु, सूजन, वायुगोला, पेटका भयंकर शूल, खाँसी, श्लेष्माधिक्य पर लाभदायी है। विष्टब्धता दूर करता है, अपान-वायुको निकालता है। जिन लोगोंको वायु नहीं सरता उनको इससे लाभ होता है। अवस्थास्थापक तथा वलीपलित नाशक है।

(२) कनकारिष्ट गदनिग्रह)

खदिर छाल ऽ६। सेर, जल १।ऽ क्वाथशेष १५ सेर।

प्रक्षेप—त्रिफला, त्रिकुटा, हल्दी, निर्मलीछाल, बावची, गिलोय प्रत्येक पाँच तोला। सबका चूर्ण करके कल्क बनाय उक्त क्वाथ जलमें मिला दें।

शहद ऽ७ सेर, धात्रेके फूल ऽ१ सेर, किण्व ऽ। सन्धान करें।

गुण—पुराना कुष्ठरोग, शोथ, प्रमेह, दमा, खाँसी, बवासीर, भगन्दरमें गुण करता है, कान्तिवर्द्धक है।

कनकासव (भै० र०)

धतूर पंचांग ऽ।, बाँसाछाल ऽ।, मुलहटी, पीपल, कटेली

नागकेसर, सोंठ, भारंगी, तालीसपत्र प्रत्येक दस तोला। जल १० सेर, क्वाथ अवशेष ४ सेर, धावेके फूल ऽ।, मुनक्का ऽ१। तिगुने जलमें क्वाथ करके डालें। खाँड ऽ३ सेर, शहद ऽ१ सेर। किण्व ऽ= सन्धान करें। मात्रा ६ माशे।

गुण—श्वास, खाँसी, उरःक्षत, क्षय, क्षीणता, जीर्णज्वरमें लाभकारी है।

कर्पूरासव (भैषज्य रत्नावली)

उत्तम मद्य या हली ऽ१ सेर, कपूर ऽ=, इलायची छोटी, नागरमोथा, सोंठ, अजवाइन, कालीमिर्च प्रत्येक १–१ तोलाका बारीक चूर्ण बनाकर इन्हें पुनः पानी डालकर खूब बारीक कल्क बनावें। इसे ऽ।। हलीमें घोल दें। दो दिन हिलाते व धूप दिखाते रहें। फिर फिल्टर पेपरमें छानकर उसमें कपूर मिलाय एक दिन साधारण गर्मी या साधारण धूपमें रख दें। जब कपूर गल जाय बोतलको संभाल कर रख लें। मात्रा १० बूँद।

गुण—विशूचिकामें अद्भुत गुणकारी है तथा वमन, अतिसार, उदरके अन्य रोगोंमें भी लाभ होता है।

कुटजारिष्ट (भैषज्य रत्नावली)

कूड़ाकी छाल ऽ६। सेर, मुनक्का ऽ३ सेर, महुवाके फूल, भारंगी दस २ छटाँक। सबको १।।ऽ मन जलमें क्वाथ करें। अवशेष क्वाथ १५ सेर रहे। धावेके फूल ऽ१ सेर, खाँड ऽ७ सेर, क्रमसे डालें। किण्व डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—सब प्रकारके ज्वर, कष्टसाध्य संग्रहणी, रक्तातिसारमें लाभदायी है, अग्निवर्द्धक है।

कुब्जकासव (गदनिग्रह)

जंगली गुलाबकी जड़ ऽ६। सेर, फूल महुआ ऽ॥=, मुनक्का ऽ३= सेर, गम्भारी फल ऽ॥= । जल १॥ऽ मन, क्वाथ शेष १५ सेर, खाँड़ ऽ८, सेर, धावेके फूल ऽ१ सेर।

प्रक्षेप—धतूराबीज ऽ। इलायची छोटी, तेजपत्र, त्रिकुटा, जावत्री, कंकोल, दालचीनी, लौंग प्रत्येक ५ तोला, कल्क करके मिलावें। किण्व डालकर सन्धान करें। मात्रा १ तोला। दिन में कई बार।

गुण—प्रत्येक सन्निपातोंमें तथा अन्य ज्वरोंमें लाभदायी है।

कुमार्य्यासव (गदनिग्रह)।

दशमूल ऽ३८, पुष्करमूल ऽ१।, धमासा ऽ१॥, चित्रक छाल ऽ॥।, गिलोय ऽ॥, हरड़, लोध, आंवला, मजीठ, बहेड़ा, चव्य, कुठ, मुलहठी, पका हुआ कैथाका फल, देवदारू, वायविडंग, पीपल, भारंगी, अष्टवर्ग, जीरा, सुपारी, रास्ना, कचूर, रेणुका, काकड़ासिंगी, हल्दी, प्रियंगु, बालछड़, नागरमोथा, सारिवा, इन्द्रजौ, सतावर, वांसाछाल, पुनर्नवां प्रत्येक वीस २ तोला। जल २।ऽ मन, क्वाथ शेष ३० सेर।

प्रक्षेप—कुमारीरस १६ सेर, मुनक्का ऽ२ सेर, खांड़ २० सेर, शहद ऽ४ किण्व ऽ। धावेके फूल ऽ२॥ चन्दन, इलायची, दारचीनी, नागकेसर, तेजपत्र, पीपल, मिर्च, जावित्री, अकरकरा, जायफल, कौंचबीज, बच, कत्था, चित्रक छाल, जीरा, अजमोद, अजवायन, सुगन्धवाला, सोंठ, मोथा, धनियाँ, हरड़ हाऊबेर, तिंतड़ीक, (डांसरिया)। प्रत्येक १० तोला। सबको चूर्ण कर रात्रिमें भिगोय सुबह कल्क बनाय क्वाथमें मिलादें, मुनक्का अलग क्वाथ करके डालें। पुनः सन्धान करे।

मात्रा २ तोला, जल मिलाकर भोजनके पश्चात्।

गुण—पांच प्रकारकी खांसी, श्वास, क्षय, आठ प्रकारके पेट विकार, वातव्याधि, संग्रहणी, पाण्डु, कामला, हलीमक, अपस्मार, अग्निमांद्य, उदावर्त्त, पांच प्रकारके गुल्म, अफरा, कुक्षि-शूल, प्रत्यध्मान, गुदग्रह, अष्ठीला, हृद्रोग, तथा स्त्रियोंके मासिक श्रावकी कमीमें लाभ करता है।

(२) कुमार्यासव (गदनिग्रह)।

ऽ५ सेर कुमारी लेकर ऽ५ सेर जल डाल कर पकावें। जब घीकुवार गल जाय और रस कोई ऽ४ सेर रह जाय, उतार कर छान लें।

इसमें इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, लौंग, निमक-सैंधव, हल्दी, दारुहल्दी, पापल, मिर्च, करंज, मोंगी, धायके फूल, अकरकरा, बच, जावित्री, बायविड़ंग प्रत्येक ५ तोला, हरड़की बकली १० तोला, सबका चूर्ण बनाय जलमें भिगो खूब बारीक पीस कर उस कुमारीके रसमें मिलादें। इसमें खाँड ऽ२ सेर क्रमसे डाल कर सन्धान करें। मात्रा २ तोला भोजनके पश्चात्।

गुण—यह गुल्म, अफरा, पसलीकी हूक, पेटका शूल, बलगम पेटकी अनेक बीमारियां, मन्दाग्नि, श्वास, खांसी, हिचकी, क्षय, प्लीहा वृद्धि, यकृत वृद्धि, शोथ आदिमें अच्छा लाभ करता है।

(३) कुमार्यासव (योगरत्नाकर)।

भांग ऽ१॥, घीकुमारके पट्ठे ऽ२० सेर। दोनोंको ऽ२० सेर जल डालकर पकावें जब ऽ२० सेर जल रहे उतार कर छान निचोड़ लें।

प्रक्षेप—जायफल, लौंग, शीतल चीनी, कंकोलमिर्च, जटा-

मांसी, चव्य, चित्रकछाल, जावित्री, काकड़ासिंगी, बहेड़ा, पोहकर मूल-प्रत्येक ५ तोला, सबका चूर्ण करके कल्क बनाय उक्त क्वाथ जलमें घोल दें। धावेके फूल ऽ१, गुड़ ऽ५ सेर, शहद ऽ२॥ सेर, थोड़ा २ क्रमसे मिलावें। ऽ। जगल डाल कर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—खांसी, श्वास, क्षय, आठ प्रकारकी पेटकी बीमारी दोनों तरहकी ववासीर, वातव्याधि, अपस्मार आदि रोगोंमें लाभ करता है। स्त्रियोंके नष्टार्त्तवको पुनःखोलता है और रक्त गुल्मको दूर करता है।

(४) कुमार्यासव (शार्ङ्गधर)।

घीकुमारीका रस ऽ२० सेर, पकाकर निकाला हुआ।

खाँड ऽ५ सेर, शहद ऽ५ सेर, लोह चूर्ण ऽ२॥ जो त्रिफलाके पानीमें डाल कर गलाया हो वह लोह जल।

त्रिकुटा, लौंग, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, चित्रक, पीपरा मूल, वायविडंग, गज पीपल, चव्य, हाऊबेर, धनियां, सुपारी, कुटकी, पोहकरमूल खरैंटी कंघो, कौंचबीज, गोखरू, सौंफ, हिंगुपत्री, अकरकरा, उटंगनबीज, नागरमोथा, त्रिफला, रास्ना, देवदारू, हल्दीदोनों, मूर्वा, मधुरसा, दोनोंपुनर्नवा, लोध, सोना मक्खी भस्म, प्रत्येक २॥ तोला, सबका चूर्ण करके कल्क बनाय उक्त क्वाथ जलमें घोलकर क्रमसे थोड़ा थोड़ा मीठा छोड़, ऽ॥ धावेके फूल, ऽ॥ जगल मिलाकर सन्धानार्थ रख दें।

मात्रा २ तोलासे ४ तोला तक भोजनके पश्चात्।

गुण—परिणाम शूल, आध्मान, गुल्म, उदावर्त्त, यकृत वृद्धि, प्लीहा-वृद्धि, मूत्र कृच्छ्र, मृगी, अर्श, उदरकृमि, (चुखकृमि),

मन्दाग्नि, अश्मरी, जीर्णज्वर, रक्तपित्तमें लाभदायी है। अच्छारक्त वर्द्धक व पाण्डुरोग नाशक है। इसके सेवनसे वर्ण, अग्नि, धातु, तेजव, वीर्यकी वृद्धि होती है।

कपासारिष्ट (पं० घनानन्दजी पन्त)।

कपासकी जड़ ऽ३, बांसकी जड़ ऽ२ सौभाञ्जन ऽ१।। चित्रक मूल ऽ१।।, अशोक छाल ऽ१।। दशमूल ऽ१।। जल २।ऽ अवशेष ।।ऽ५ प्रक्षेप—गुलबाबूना ऽ१, धावा ऽ।।, लोध, गुगुल, एलवा, देवदारु, पुनर्नवा, जटामांसी, दारुहल्दी, सर्दचीनी, चन्दन दोनों, प्रत्येक १० तोला, द्राक्षा ऽ२।।, मधु ऽ२, चीनी ऽ१० सेर, किएव ऽ। सन्धान करें।

लाभ—प्रसूतकालमें गर्भाशय सङ्कोचनार्थसर्वोत्तम चीज है। मात्रा २ तोला।

कूष्माण्डासव (गदनिग्रह)।

पेठेका पानी १६ सेर, खाँड ऽ८ सेर, जगल ऽ।।

त्रिकुटा, लौंग, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, जायफल, सर्दचीनी, जावित्री, प्रियंगु, कैथापका हुआ फल, कूड़ाछाल, गोखरू सत्तगिलोय, भारंगी, वज्राबीज, हाऊबेर, सुपारी, देवदारु, धावाफूल, मोथा, कत्था, चित्रक, त्रिफला, रास्ना, मुलहटी, तुम्बरू, नागकेसर, पीपरामूल, अजमोद, कलौंजी, अजवायन, कायफल, तोखाखीर, अकरकरा, उटंगन, कैथा वृक्षकी छाल, सोया, गजपीपल, लसोढ़ा, इन्द्रजव, तालमखाना, कचूर, मोचरस, कसेरू, सहदेवी, चिरायता, चव्य, स्पृक्का, पद्माख, दोनों हल्दी, धनिया, देवदाली, विदारीकन्द, प्रत्येक १ तोला सबका चूर्णकर कल्क बनाय पेठा जलमें घोल दें और ऽ१ सेर धावेके फूल छोड़ कर सन्धान करें।

मात्रा २ तोलासे ४ तोला तक।

गुण—धातु क्षय, मन्दाग्नि, प्रमेह, पाण्डु, बवासीर, संग्रहणी, प्लीहा वृद्धि, उदर रोग, भगन्दर, आमवात, रक्तपित्त, श्लेष्मवृद्धि, रक्तविकार, वातव्याधि, मेदोवृद्धि आदिमें लाभ करता है। रक्तपित्त व रक्तांशमें भी फायदा करता है।

(२) कूष्माण्डासव (योगचिन्तामणि)।

पेठेका रस ऽ१५ सेर, बेरीकी छाल ऽ।।, कसेला, कसेली (यह पञ्जाबमें इसी नामसे मिल जाती हैं) धावेकेफूल, हाऊबेर प्रत्येक १० तोला, त्रिफला, काकड़ासिंगी, भारंगी, पुष्कर मूल मूसलीकाली, कौंचबीज, शीतलचीनी, बन्सलोचन, मुलहठी, मोचरस, मोथा, पीपलामूल, अष्टवर्ग, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, विडंग, त्रिकुटा, चित्रक, केसर, जावित्री, लौंग, अकरकरा, जायफल, दशमूल, लालचन्दन, कायफल, रेणुका, कचूर, कुटकी, प्रत्येक पांच तोला। बांसा, कुलंजन, अजमोद, असगन्ध, चव्य, माजूफल, सतावर, लोह भस्म, जिमीकन्द, तेजबल, तालीसपत्र, चिकनी सुपारी, प्रत्येक १ तोला। सबका चूर्णकर कल्क बनाय पेठेके रसमें मिलाकर थोड़ी थोड़ी खाँड डालते हुए ऽ८ सेर खाँड डालें। ऽ। जगल मिलाकर सन्धान करै।

मात्रा ४-५ तोला।

गुण—खांसी, दमा, हृदयरोग, पाण्डु, सिल, उरःक्षत, क्षय, गुल्म, उदररोग, संग्रहणी, बवासीर मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, शोथ, अतिसारमें लाभकारी है। मल शोधक तथा बल वर्द्धक है।

खदिरासव (गदनिग्रह)।

खदिर छाल ऽ३=, देवदारु ऽ३=, त्रिफला ऽ१।, दारुहल्दी

S१॥ बावची S॥। जल २S मन क्वाथ शेष ३० सेर। शहद S१० सेर, खाँड S५ सेर।

प्रक्षेप—धावेके फूल S१, सर्दचीनी, लौंग, इलायची, जायफल, दालचीनी, केसर, मिर्च, तेजपत्र, प्रत्येक पांच तोला, किण्व S। सन्धान करें।

मात्रा—२ तो० से ४ तोला तक।

गुण—समस्त प्रकारके कुष्ट, पाण्डु, हृदयरोग, खांसी, उदरकृमि, उदरग्रन्थि, गुल्म, प्लीहावृद्धि, यकृतवृद्धिमें लाभ करता है, विशेष करके कुष्ठके लिये हितकर है।

(२) खदिरासव (गदनिग्रह)।

खदिर छाल S६। सेर, जल १।S मन, अवशेष १५ सेर। शहद S७॥ सेर।

प्रक्षेप—त्रिकटु, त्रिफला, पिण्डखजूर, दारुहल्दी, बावची, गिलोय, विडंग, प्रत्येक ५ तोला, धावेके फूल S॥=। जगल S। सबका सन्धान करें। पश्चात् छान करके कस्तूरी १ माशा, कपूर २ माशे मिला दें।

मात्रा २½ तोला।

गुण—यह आसव गलितकुष्ठ तकमें लाभ दायी है। इसे प्रत्येक कुष्ठ सम्बन्धी या उपदंश सम्बन्धी रक्त विकारमें देना चाहिये।

खर्जूरासव (योगरत्नाकर)।

पिण्डखजूर S८ सेर। जल ॥।S। जब १५ सेर जल रहे उतार छान लें, इसमें हाऊवेर S। धावेके फूल S।, जगल S। मिलाकर सन्धान करें।

मात्रा २–४ तोला।

गुण—क्षय, शोथ, प्रमेह, पाण्डु, कामला, संग्रहणी, गुल्म, तथा बवासीरमें लाभ करता है।

(२) खर्जूरासव।

खजूर, मोथा, आमला, कायफल, मुनक्का, हरड़, पाठा, भारंगी, कचूर, कुठ, सुगन्धवाला, अजमोद, पीपरामूल, पुनर्नवा, गोखरू, कायफल, प्रियंगु, कचूर, मिर्च, जीरा, हाऊवेर निसोत, कुटकी, धमासा, हरड़, लाजवन्ती पंचाग, सहदेवी, कुलंजन, प्रत्येक पाव भर। सबको १।ऽ जलमें क्काथ करें अवशेष क्काथ जल १५ सेर।

प्रक्षेप—बालछड़, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, पीपल, लौंग, जायफल, चन्दन, लोह भस्म, प्रत्येक १० तोला। इन चीजोंका चूर्ण करके कल्क बनाय उक्त क्काथ जलमें घोल दें। धावेके फूल ऽ॥ खाँड ऽ७ सेर, जगल ऽ। सन्धान करें।

मात्रा—२ तोलासे ४ तोला तक।

गुण—हैजा, क्षय, हृद्रोग खांसी, विषमज्वर, शोथ, तृषा, श्वांस, प्रमेह, पाण्डु हिक्का, शिरोरोग अरुचि और मन्दाग्निमें लाभ करता है कृशताको दूर कर शरीरको मोटा बनाता है।

गण्डीरासव (गदनिग्रह)।

गण्डनीशाक पुष्पसहित ऽ५ त्रिफला ऽ७॥, दशमूल १। सेर कूड़ाछाल ऽ॥ सेर, भिलावा, इन्द्रजौ, विडंग, मोथा, प्रत्येक आध पाव। पाठा, मूर्वा, दन्ती, वच, चित्रक प्रत्येक ऽ=॥ छटांक मुनक्का ऽ१ सेर क्काथ जल, प्रथम गण्डीरको पांचगुनी जलमें भिन्न पका लें। चतुर्थांश रहने पर इसे छान कर पात्रमें डाल दें। फिर अन्य चीजोंको १॥ऽ जलमें भिन्न पकावें, जब २० सेर जल

रहे उतार छान पात्रमें डाल दें। फिर इसमें—खांड S८, शहद S४ सेर क्रमसे डालें।

किएव S।, लोह भस्म S।, बायविडंग S≈, मिर्च S≈, कल्क करके मिला दें। सन्धान होने पर छान रक्खें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—शोष, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ट, प्लीहावृद्धि, अर्श, भगन्दर, शोथ, पाण्डु, ग्रहणी, उदरग्रन्थी, कण्ठमाला गलगण्ड, विषमज्वर, खांसी, विद्रधि और वातरक्तमें लाभकारी है।

गृञ्जनासव (धन्वन्तरी)

गाजर S५ सेरको S१० सेर जलमें उबाल कर गला लें।

दारचीनी, गुलसुर्ख, तुख्मरेहां, बालछड़, कचूर प्रत्येक १५ तोला, सोंठ, बादरंजबोया, गावज़बां, अबरेशम, गुलगावजबां बहमन दोनों, पोस्त तुरंज, चन्दन, अगर बुरादा १० तोले मस्तगी ५ तोला, चोपचीनी S१, हरड़ छिलका S२।। इन सबको आठ गुणे जल अर्थात् १S मनमें पकाकर चौथाई रहने पर छान लें। बबूल छाल २ सेर खांड S५ मिलाकर सन्धान करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—वाजीकरण, स्तम्भक, वीर्य वर्द्धक, श्लेष्क व पित्त नाशक है।

गुग्गुलासव (गदनिग्रह)।

त्रिफला S३।।।, गुग्गुल, दारचीनी, इलायची, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, अजवायन, त्रिकटु, तालीसपत्र, मोथा, नागकेसर कायफल, प्रत्येक S। पावभर। जल १।।S मन अवशेष जल २० सेर।

धावाफूल ऽ१ मुनक्का ऽ१ पकाया हुआ। खांड़ ऽ१० सेर जगल ऽ। सन्धान करें।

गुण—उदररोग, प्लीहावृद्धि, उरुस्तम्भ, कामला, पुराना दमा, खाँसी, सूजन, भगन्दर, उदर कृमि, प्रमेहमें लाभ करती है। अग्निदीपन है।

गुडारिष्ट (चरक)।

मजीठ, हल्दी, मुनक्का, खरेटी, लोध, हरड़ प्रत्येक सेर सबको १ मन जलमें पकाकर चतुर्थांश रहनेपर छान ले उसमें लोहा भस्म ऽ१ सेर, खाँड़ ऽ५ सेर, जगल ऽ= सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—पाण्डु, यकृतीवृद्धि, प्लीहावृद्धिमें लाभदायी है।

चन्दनासव (भैषज्यरत्नावली)

चन्दन सफेद, सुगन्धवाला, मोथा, गम्भारीफल, नीलोफर, प्रियंगू, पद्माख, लोध, मजीठ, लालचन्दन, मोथा, चिरायता, कुटकी, वटजटा, पीपल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलहठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनार छाल, आमकी छाल, मोचरस प्रत्येक पाँच तोला मुनक्का ऽ१ सेर। जल ऽ२० सेर चतुर्थांश क्राथजल। शहद ऽ१ खाँड़ ऽ२ धावेके फूल ऽ। जगल ऽ– सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—शुक्रप्रमेह, लालामेहमें हितकर है। बलवर्द्धक, पुष्टिकारक तथा हृदयको बल देनेवाला, सुजाकमें, मूत्रकृच्छ्रमें फायदा करता है। क्षुधावर्द्धक है।

चन्दनासव (आयुर्वेदविज्ञान)

चन्दन, देवदारु, चीड़ बुरादा, दारुहल्दी, हल्दी, निसोत,

चित्रक, अगर, आँवला, चमेलीपुष्प, सतावर, पाषाणभेद, वासा-छाल, अनन्तमूलदौन, लक्ष्मणाकी जड़, नगन्दवावरी, वरुणछाल, प्रत्येक पाँच तोला। मुनक्का ऽ१। सेर। जल ऽ२० चतुर्थांश अवशेष क्वाथ। धातकी पुष्प ऽ।। खाँड़ ऽ२ सेर, शहद ऽ१ सेर, जगल ऽ― सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—वीर्य, रज, तथा मूत्रके दोषोंको हटाता है १८ प्रकारके प्रमेहको दूर करता है। मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, अश्मरी, मूत्राघात, अन्त्रवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, खाँसी, श्वास, कुष्ट, अग्निमांद्य, अरुचिमें लाभदायी है।

चविकासव (गदनिग्रह)

चव्य (मोटा पीपरामूल या मरिचमूल डालें) ऽ३= चित्रक ऽ१।।― हिंगुपत्री, पोहकरमूल, वच, हाऊवेर, कचूर, पटोलमूल, त्रिफला, अजवायन, कूड़ाछाल, इन्द्रायणमूल, धनियाँ, रास्ना, दन्ती, प्रत्येक दस छटाँक, विडंग, मोथा, मजीठ, देवदारु, त्रिकुटा प्रत्येक पाँच छटांक। सबको ३ऽ मन जलमें पकावे अवशेष क्वाथ १ मन।

प्रक्षेप—खाँड़ २० सेर, धातकी पुष्प ऽ१।। सेर, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर प्रत्येक दस तोला। लौंग, त्रिकुटा, सीतलचीनी प्रत्येक ५ तोला सबका चूर्ण कर कल्क बनाय सन्धानार्थ डाल दें। किएव ऽ।। खांड क्रमसे छोड़ें। मात्रा २ तोला।

गुण—गुल्म, उदरग्रन्थी प्रत्येक प्रमेह, जुकाम, क्षय, कास, अष्ठीला, वातरक्त, अन्त्रवृद्धि तथा समस्त उदर रोगोंमें लाभदायी है।

चन्द्रहास आसव (रामविनोद)

जायफल, लौंग, इलायची छोटी, जावत्री, पीपल बड़ी, दाल-

चीनी, सर्दचीनी, कंकोलमिर्च, मिर्च काली, छोटीपीपल, उटंगन, अकरकरा, धनियाँ, हाऊवेर, लिहसोढ़ा, अजमोद, चव्य, सोंठ, कचूर, चन्दन दोनों पोस्तका छिलका, कौंचबीज प्रत्येक ५ तोला।

त्रिफला, देवदारु, जामुनकी गुठली, बबूलकी छाल, कसैला, कसैली (पंजाबमें प्रसिद्ध हैं) मोचरस, जीरादोनों, भारंगी गिलोय, मूसलीकाली, मूसलीस्वेत, वंशलोचन, मस्तगी, कुलंजन, संभालूबीज, वायविडंग, शंखपुष्पी, कपूरकचरी, सौंफ, नागकेसर, पोहकरमूल, तगर, पद्माख, त्रायमाण, जवासा, धमासा कटेलीदोनों, मूर्वा, भूफली, माजूफल, समुद्रसोख, कायफल, सिंघाड़े, गोखरू, धावेके फूल, मांई, पाखाणभेद, निसोत, ऐरण्डमूल, विजयसार, भांग, असगन्ध, प्रियंगू, मोथा, वांसा, गंगेरन, लोध प्रत्येक २ तोला। सबको बारीक कूटकर चौगुने गरम जलमें रात्रीको भिगो दें, सुबह मलकर उस जलको निकाल लें फिर अगले दिग दूना जल डालकर फिर भींगा रहने दें दूसरे दिन उसे भी मलकर छान जल निकाल लें। अवशेषको १६ सेर, जलमें डालकर क्वाथ करें जब ऽ५ अवशेष रहे उतार छानकर तीनों जलोंको एकत्र कर दें।

प्रक्षेप—गिरी बादाम ऽ१ सेर, मुनक्का ऽ१ सेर, किसमिस ऽ२ सेर, छुहारे ऽ१ सेर, खाँड़ ऽ१० सेर, बेरके जड़की छाल कुटी हुई ऽ२ सेर, आमकी छाल ऽ१ सेर, मुनक्का, किसमिस और छुहारेको दुगुने जलमें उबाल लें। जब मुनक्का गल जाँय जल आधा रह जाय उतार मथकर क्वाथमें मिला दें। बेरीकी छाल, आमकी छाल कूटकर डालें, गिरी बादाम छीलकर पीसकर उसका दूध निकालकर मिलावें। जगल ऽ॥ सेर, डालकर सन्धान करें। सन्धानके पश्चात् इसका अर्क खींचना

लिखा है। किन्तु अर्क न खींचकर इसी तरह छानकर उपयोगमें लावें तो बहुत लाभ करता है। जब छान लें तो इसमें निम्नलिखित चीजें और मिला दें, कस्तूरी छः माशे, भीमसेनी कपूर ६ माशे, भस्में घुलती नहीं इसलिए न डाली जाकर इसके साथ खावें।

मात्रा २–४ तोला तक

गुण—भूख लगती है। अरुचि नष्ट करती है, बलवर्द्धक नपुंसकता दूर करता है, स्तम्भन कर्त्ता, वाजीकरण, दोनों प्रकारकी बवासीर, कुष्ट, रक्तपित्त, गलरोग, जलोदर, प्लीहावृद्धि, यकृतवृद्धि, पथरी, वायगोला, गठिया, आदिमें लाभदायी है। समस्त ज्वर व सन्निपातमें देनेसे लाभ होता है।

चित्तचन्दिरासव (सिद्धभैषज्यमणिमाला)

मोथा, मिर्च, चव्य, चित्रक, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, वायविडंग, आंवला, खस, शिलापुष्प, सुपारी, लोध, चण्डाली कन्द, कुटकी, चन्दन, तगर, बालछड़, दालचीनी, गोंदनीम, नागकेसर प्रत्येक ५ तोला धावेके फूल ऽ॥= मुनक्का ऽ३। जल ऽ२४ अवशेष जल ऽ८ सेर खाँड़ ऽ४ सेर क्रमसे डालें। जगल ऽ= डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—खांसी, दमा, क्षय, मन्दाग्नि, पर लाभ करता है, कब्जको दूर करता है।

चित्रकाद्यारिष्ट (गदनिग्रह)

चित्रक, त्रिफला, पाठा, चव्य, पीपरामूल, विड़ंग, देवदार प्रत्येक पाव भर, कुठ, भिलावा, एलवालुक, वच, मिर्च, पीपल कुटकी, इन्द्रयव, मोथा, प्रत्येक तीन छटांक। सबका चूर्ण करके ॥६२ सेर जलमें क्वाथ करें ऽ१० सेर जल रहे छान लें।

प्रक्षेप—चव्य, चित्रक, पीपरामूल, त्रिफला, त्रिकुटा प्रत्येक ५ तोला। इनका चूर्ण कर कल्क बनाय क्वाथमें भिगो दे। खांड़ ऽ४ सेर शहद ऽ१ धावेके फूल ऽ॥ जगल ऽ= सन्धान करें। मात्रा—२ तोला।

गुण—ग्रहणी, पाण्डु, उदररोग, प्लीहा, गुल्म, शोथ, बवासीरमें लाभदायी है। अग्नि वर्द्धक स्रोत शोधक है।

जीरकाद्यारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

सफेद जीरा ऽ१२॥ सेर कूटकर डेढ़ मन जलमें पकावें जब २० सेर जल रहे उतार कर छान लें।

प्रक्षेप—जायफल, मोथा, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, अजवायन, कंकोलमिर्च, लौंग प्रत्येक ५ तोला सबको कूट कल्क करके डालें। धावेके फूल ऽ१ खांड ऽ१० सोंठ ऽ= जगल ऽ= मिलाकर सन्धानकरें। मात्रा २ तोला।

गुण—प्रसूतिकारोग, संग्रहणी, अपच्यदोष, अग्निमान्द्य पर लाभकारी है।

ताम्बूलासव (गदनिग्रह)

पान बंगला ऽ५ सेर कत्था ऽ॥= सुपारी ऽ॥= धावेके फूल ऽ॥ कंकोलमिर्च, पीपल, दस २ तोला त्रिफला, जायफल, इलायची, लौंग प्रत्येक ५ तोला धावा और कत्थाको छोड़कर सबको बारीक पीसलें और इनका कल्क बनाकर ऽ१५ सेर गरम जलमें भिगो दें। फिर उसमें धावाफूल व कत्था, तगर ऽ। जगल व थोड़ा २ करके ऽ८ खाँड़ डाल कर सन्धान कर लें। मात्रा २ तोला।

गुण—श्लेष्म रोग व अर्शमें लाभकारी है बल, वीर्य उत्पन्न करता है। पथरी नाशक है।

त्रायमाणासव (गदनिग्रह)

त्रायमाण, कायफल, दन्तीमूल, पोहकरमूल, धयांसा, अञ्जन वृक्षकी छाल, बड़ीकटेली, पीपरामूल, आमला, वायविडंग, भारंगी, मकोय, एलवालुक, हरड़, कचूर, इन्द्रायण, प्रत्येक आधासेर; जल १॥ऽ मन अवशेष ऽ२० सेर।

प्रक्षेप—पीपल ऽ। इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर प्रत्येक १० तोला धावेके फूल ऽ१ खांड ऽ१० सेर जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—खांसी, दमा, पाण्डु, हृदयरोग, गुल्म, अर्श, सन्निपातमें तथा अन्यज्वरोंमें लाभदायी है।

त्रिफलाद्यारिष्ट (गदनिग्रह)

त्रिफला, चित्रक, पीपल, अजवायन, विडंग, लोहभस्म प्रत्येक पाव भर। लोह भस्मको छोड़कर सबका चूर्ण कर १६ सेर जलमें क्वाथ करें जब ऽ५ सेर जल रहे छानलें। पश्चात् लोह मिलावें। शहद ऽ॥ खांड ऽ२॥ जगल ऽ— सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—हृदरोग, पाण्डु, शोथ, प्लीहा भ्रम, अरुचि, खांसी, श्वांस और कुष्ठमें लाभ करता है।

दन्त्यारिष्ट (वंगसेन)

दन्ती, चित्रक, त्रिफला, दशमूल, प्रत्येक ५ तोला सबको १६ सेर जलमें पकावें ५ सेर रहे उतार छानलें। खांड ऽ२॥ जगल ऽ— सन्धानकरें। मात्रा २–४ तोलातक।

गुण—अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, विष्टम्भतामें, लाभदायी है। अपान वायु सारण करता है। अग्नि दीपक है। रुचिवर्द्धक है।

दशमूलारिष्ट (शार्ङ्गधर, गदनिग्रह)

दशमूल प्रत्येक पाँच ऽ।– छटाँक चित्रक, पुष्करमूल प्रत्येक ऽ१।।– लोध, गिलोय प्रत्येक ऽ१। सेर, धावेके फूल ऽ१ सेर, धमासा ऽ।।।, कत्था, विजयसार, हरड़, प्रत्येक ऽ।। कुठ, मजीठ देवदारू, वायविडंग, मुलहटी, भारंगी, पकाकैथा, बहेड़ा, पुनर्नवा-चव्य, जटामासी, प्रियंगू, अनन्तमूल, कालाजीरा, निसोत, रेणुका, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सौंफ, पद्माख, नागकेसर, मोथा, इन्द्रजव, काकड़ासिंगी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि प्रत्येक दस तोला। क्वाथ-जल २ऽ मन अवशेष २५ सेर।

प्रक्षेप–मुनक्का ऽ४ का भिन्न क्वाथ करें, गल जानेपर मिलावे। खांड ऽ१२ सेर शहद ऽ२ धावेके फूल ऽ१।।। कंकोलमिर्च, सुगन्धवाला, चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, पीपल प्रत्येक दस तोला सबको कूटकर कल्क बनाय क्वाथजलमें मिला दें और इसमें ऽ। जगल मिलाकर तीन सेर खाँड़ डालकर सन्धान उठाते चले जाँय। अन्तमें जब छान लें तो उस आसवमें ५। माशे कस्तूरी पीसकर सारे आसवमें मिला दें। मात्रा २ तोला भोजनके बाद।

गुण—प्रसूता स्त्रियोंको जब आँवल रह जाय या प्रसूतकाल-में ज्वर हो, बदनमें दर्द, अरुचि बनी रहै। रक्तश्राव खुलकर न हुआ हो तो इसके देनेसे विशेष लाभ होता है। उदरविकार, पेट-शूल, दर्द, अध्मान, मन्दाग्नि, आदिमें अच्छा काम करता है। इससे भिन्न अतिसार, संग्रहणी, श्वाँस, खाँसी, भगन्दर, वायगोला, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, बवासीर, मूत्रशर्करा, पथरी,

मूत्रकृच्छ्र आदिमें लाभदायी है। धातुक्षयको दूर करता है। वन्धत्वदोष इसके सेवनसे निवृत्त होता है। बलवर्द्धक व वीर्यवर्द्धक है।

दशमूलारिष्ट (सुश्रुत)

दशमूल, दन्ती, चित्रक, और हरड़ प्रत्येक ऽ१ सेर। जल २।ऽ मन। क्वाथ करें जब २० सेर जल रहे उतारकर छान लें। ऽ१० सेर खांड़, ऽ॥ जगल मिलाय सन्धानार्थं रख दें। खाँड़ क्रमसे डालें। मात्रा २ तोला।

गुण—अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, उदावर्त्त, अरुचिमें लाभदायी है।

दशमूलासव (वंगसेन)

दशमूल, हल्दी, जीवक, ऋषभक, चित्रक, प्रत्येक ऽ।- छटांक। सबको कूटकर १ऽ मन जलमें पकावें १० सेर रहनेपर उतारकर छान लें।

प्रक्षेप—खाँड ऽ४ सेर, शहद ऽ१ सेर, प्रियंगू मजीठ, विडंग, मुलहठी, पीपल, लोध सबका कल्क बनाकर मिलावें। आध पाव जगल डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—अग्निवर्द्धक और रक्तपित्तनाशक है। अध्मान, कफवृद्धि, हृदयरोग, पाण्डु और सर्वांग पीडामें लाभदायी है।

दुरालभारिष्ट (गदनिग्रह)

धमासा ऽ२ सेर, चित्रक, वांसा, हरड़, आमला, सोंठ, पाठा, दन्ती प्रत्येक बीस तोला। जल ऽ३२ सेर, अवशेष ऽ८ सेर रहे तो खांड ऽ४ सेर, जगल ऽ= डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—अर्श, संग्रहणी, उदावर्त्त, अरुचि, मलावरोध, अपानवायु अवरोध, उद्गारावरोध, मन्दाग्नि, पाण्डु व हृदरोगमें लाभदायी है।

(२) दुरालभासव (चरक)

धमासा ऽ२ सेर, आमला ऽ१ सेर, चित्रक, दन्ती प्रत्येक १ तोला। हरड़ ऽ६।, जल २ऽ मन। अवशेष क्वाथ २५ सेर।

प्रक्षेप—खांड ऽ१० सेर, शहद ऽ२॥ सेर, प्रियंगू, पीपल, विडंग प्रत्येक ऽ। सबका कल्क करके मिलाकर किण्व ऽ। डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—विष्टब्धता, अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह और रक्तपित्तमें लाभकारी है। स्वर व वर्णप्रद है। श्लेष्क नाशक है।

देवदार्वासव (गदनिग्रह)

देवदारु ऽ३=, वांसामूल छाल ऽ१। सेर, इन्द्रजौ, दन्ती, मजीठ, तगर, हल्दी, दारुहल्दी रास्ना, मोथा, सिरसछाल, विडंग, खदिर-छाल, अर्जुनछाल, प्रत्येक ऽ॥= छटाँक। गिलोय, चित्रक, चन्दन, अजवायन, मांसरोहणी, कूड़ाछाल प्रत्येक ऽ।– छटाँक जल २॥ऽ मन। अवशेष क्वाथ ३० सेर।

प्रक्षेप—शहद ऽ१५ सेर, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, त्रिकटु, नागकेसर, प्रियंगू प्रत्येक ५ तोला। सबका कल्क करै। धायके फूल ऽ१ सेर जगल ऽ। डाल सबको मिलाकर सन्धान करै। मात्रा २ तोला।

गुण—प्रमेह, मूत्रकृच्छ, वायुरोग, संग्रहणी और अर्शमें लाभकारी है।

द्राक्षासव (द्राक्षारिष्ट, शार्ङ्गधर)

काला मुनक्का ऽ६। जल १।ऽ मनमें पकावे। जब १५ सेर शेष रहे उतारलें।

प्रक्षेप—कंकोलमिर्च, लौंग, जायफल, मिर्च, दालचीनी,

इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, पीपल, चित्रक, चव्य, पीपरामूल, विडंग, प्रियंगू प्रत्येक ५ तोला। सबका कल्क करै। धावेके फूल ऽ।। खांड ऽ६ शहद ऽ१।। जगल डालकर सन्धान करें। जब द्राक्षाका मीठा विलीन होजाय तो फिर शहद डालै। शहदका मीठा विलीन होजाय तो फिर आधी खांड डालैं। इस तरह सारा मीठा डालकर सन्धान समाप्त होनेपर छान ले।

मात्रा २–४ तोला भोजनोपरान्त।

गुण—ग्रहणी, अर्श, उदावर्त्त, रक्तपित्त, उदरकृमि, कुष्ट, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग, गलरोग, ज्वर, पान्डु, कामलामें लाभदायी है। वलवर्ण अग्नि और वीर्यवर्द्धक है।

द्राक्षासव (बृहद्योगतरंगनी)

किसमिस या दाख छोटी ऽ६। जल १। मन अवशेष १५ सेर

प्रक्षेप–चतुर्जात, त्रिकुटा, पीपरामूल, लौंग, चव्य, चित्रक प्रत्येक ५ तोला धावेके फूल ऽ।। जगल ऽ। खांड ऽ६ शहद ऽ१।। उपरोक्त विधिसे सन्धान करें। मात्रा २–४ तोला।

गुण—क्षय, कास, श्वांस, जीर्णज्वर, शोथ, उरःक्षत तथा हृदयकी निर्वलता, स्नायविक निर्वलतामें अच्छा लाभकारी है।

क्षुधावर्द्धक, वमन, अजीर्ण नाशक है।

धान्यकारिष्ट (गदनिग्रह)

धनियां, खस, मोथा, निम्बछाल प्रत्येक पाव भर पद्माख ऽ। कुष्ठ ऽ।। गिलोय ऽ१ सेर त्रिफला ऽ१ जल १ऽ मन अवशेष ऽ१० सेर।

प्रक्षेप—दारुहल्दी चूर्ण ऽ। धातकी पुष्प ऽ।। शहद ऽ५ सेर, किएव ऽ≈ सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—प्रत्येक प्रकारके ज्वरोंमें इसका उपयोग करते हैं।

धात्र्यारिष्ट (गदनिग्रह)

आँवले पके हरेका रस ऽ५ सेर, पीपल छोटीका चूर्ण ऽ।। सेर, खांड ऽ२।। किण्व ऽ। सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—कामला, पाण्डु, हृदरोग, वातरक्त, विषमज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि और श्वांस रोगमें लाभदायी है।

नारिकेलासव (गदनिग्रह)

कच्चे नारियल फलका पानी ऽ३२ सेर ईखका रस ऽ१६ सेर शाल्मली फूलोंका रस ऽ२ दशमूलका क्वाथ ऽ२ चतुर्जात पाव २ भर चन्दन, लौंग पांच २ तोला धावेके फूल ऽ१ किण्व ऽ= सबका प्रथम सन्धान करें। पश्चात् इसमें ऽ८ सेर खांड क्रमसे डालकर सन्धान करते रहें, पश्चात् छाननेके निम्नलिखित चीजें और मिलादें कस्तूरी ६ माशे केशर ५ तोला। इस चीजोंको जलमें पीसकरके मिलावें। मात्रा १ तोलासे २ तोला तक।

गुण—इसके सेवनसे नपुंसकता दूर होती है, बुढ़ापा दूर होकर पुनः शरीरमें नवजीवन शक्ति आती है।

पत्राङ्गासव (भैषज्यरत्नावली)

पतंग, खैरछाल, वांसाछाल, सेंवलके फूल, वला, भिलावां, अनन्तमूलदोनों, गुडहलके फूल, आमकी मींगी, दारुहल्दी, चिरायता, पोस्तडोडा (फल), जीरा स्वेत, लोहभस्म, रसौत, वेलछाल, भाँगरा, दालचीनी, केसर, लौंग, प्रत्येक ५ तोला सबका चूर्ण करके (केसरको भिन्न रखलें पश्चात् डालें) सबका ऽ१५ सेर जलमें क्वाथ करें ऽ५ सेर रहे उतार छान लें। मुनक्का ऽ१ सेरको ऽ४ सेर जलमें भिन्न उबालकर ऽ२ सेर जल रहे—मलकर उसी क्वाथमें मिलादें। धावेके फल ऽ।। किण्व ऽ= पाव डालकर

सन्धान करें जब मुनक्का मीठा विलीन होजाय तो दोबार करके ऽ२ सेर शहद डालदें। जब यह भी विलीन होजाय तो ऽ२ सेर खांड डालें। पश्चात् छानकर केसर पीसकर मिलादें।

मात्रा १–२ तोला तक।

गुण—प्रत्येक प्रकारके प्रदरको यह आसव समूल नष्ट कर देता है। इससे पित्त, पाण्डु, शोथ ज्वर, मन्दाग्नि तथा अरुचिमें लाभ होता है।

पार्थाद्यारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

अर्जुनको छाल ऽ६। मुनक्का ऽ३⁼ महुआके फूल ऽ१। सबको २ऽ मन जलमें काथ करें जब ऽ३० सेर जल रहे उतार छान लें।

प्रक्षेप—खांड ऽ१५ सेर धावेके फूल ऽ१ किण्व ऽ। डालकर सन्धान करें। मात्रा २–४ तोला।

गुण—यह आसव हृदयके, फेफड़ेके समस्त रोगोंमें लाभ-दायी है।

पिण्डासाव (चरक)

पीपलका चूर्ण, बहेड़ेका चूर्ण एक एक सेर इनको ऽ१६ सेर जलमें पकावें जब ४ सेर रहे छानलें। इसमें ऽ२ खांड ऽ– जगल चार वार करके डाल सन्धान क्रम पूरा करें। मात्रा १ तोला।

गुण—क्षुधावर्द्धक, कांस, श्वांसमें अत्यन्त लाभदायी है। तथा पेट फेफड़े व गला सम्बन्धी रोगोंमें बहुत फायदा करता है।

पर्पटाद्यारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

पित्तपापड़ा ऽ५ जल ऽ३० सेर काथ करें। अवशेष काथ ऽ१० सेर।

प्रक्षेप—गिलोय, मोथा, दारुहल्दी, देवदारु, कटेली, धमांसा, चव्य, चित्रक, त्रिकुटा, विडंग प्रत्येक ५ तोला कल्क करके मिला दें। धावेके फूल ऽ।। खांड ऽ५ सेर जगल ऽ=सन्धान करें। मात्रा २–४ तोला।

गुण—प्रत्येक प्रकारके विषमज्वर, पाण्डु, कावला, उदररोग, अष्टीला, प्लीहा-वृद्धि तथा शोथमें लाभकारी है।

पिप्पलीमूलाद्यारिष्ट (गदनिग्रह)

पीपरामूल, काकडाशृंगी, कटेली बड़ी, पाखाणवेद, पाटला, देवदारु, गोखरु, हरड़ प्रत्येक एक सेर बेरीकी छाल ऽ४ सेर, चित्रक, दन्ती प्रत्येक ऽ१।।– जल २।।ऽ अवशेष ऽ३० सेर। मुनक्का ऽ१ सेर।

प्रक्षेप—प्रियंगू, पीपल, लोध, एलवालुक सुपारी, सोया-निम्बछाल, गजपीपल, देवदारु प्रत्येक ५ तोला कल्क करके डालै कत्था ऽ। खाड ऽ१० सेर शहद ऽ४ सेर जगल ऽ= सन्धान करें

मात्रा २ तोला।

गुण—क्षय, खांसी, ज्वर, प्लीहा, यकृतवृद्धि, कुष्ठ गुल्म अग्निमान्द्य, श्वेत्रकुष्ठ, अश्मरी, उदर्द, विद्रधि, अन्त्रविद्रधि, वृद्धि, पाण्डु, उदररोग, स्तनविकार, नाड़ीव्रण, रक्तविकार, फोड़ा, फुन्सी, वीर्यविकार अपस्मारमें लाभदायी है।

पिप्पलासव (शार्ङ्गधर)

पीपल, लोध, मिर्च, पाठा, आँवला, एलावालुक, चव्य, चित्रक, विडंग, सुपारी, खस, चन्दन, मोथा, प्रियंगू, हल्दी, सौंफ, हरफरी, पेलव, तेजपत्र, दारचीनी, कुठ, तगर, नागकेसर, एलवालुक, लौंग, बालछड़, इलायची त्येक ५ तोला सबका चूर्णकर ऽ४ सेर जलमें भिगोदें फिर सुबह मलकर छानलें फिर ऽ४ सेर

गरम जलमें भिगोय मलकर छानलें। पश्चात् अवशेषमें ऽ१६ सेर जल डालकर क्काथ करें ऽ४ सेर रहे उतार लें।

प्रक्षेप—धावेकेफूल ऽ। जगल आधपाव मुनक्का ऽ१ सेर, इसका क्काथ करके डालें। सन्धान करें, जब मुनक्काका मीठा विलीन होजाय क्रमसे ऽ५ सेर खांड डालकर सन्धान पूरा करें। मात्रा २ तोला।

गुण—क्षय, गुल्म, संग्रहणी, पाण्डु, उदररोग, कृशता, अरुचि, ज्वर और अर्शमें लाभदायी है।

पील्वासव (गदनिग्रह)

पीलूके पके फलोंका रस ।।।ऽ मुनक्का ऽ१ खजूर ऽ१ सेर इन दोनोंके काथका जल। आँवला, पाठा, अतीस, धमासा, मुश्कवेद, त्रिकुटा, दालचीनी, इलायची, सीतलचीनी, स्पृक्का, वेर, लौंग, पीपरामूल चित्रक, वायविडंग प्रत्येक ५ तोला। सबका चूर्ण करके उष्ण जल ऽ४ सेरमें भिगोदें सुबह मलकर छानलें। फिर ऽ२ सेर, जल डालकर भिगोदें और अगले दिन छान लें। पश्चात् इसको ऽ१ सेर जल डालकर काथ करें। ऽ२ सेर रहे उतार छान सबको एकत्रकर ऽ। जगल डालकर सन्धानार्थ रखदें। जब मीठा विलीन होजाय तो ऽ१० सेर खांड क्रमसे डालकर सन्धान पूरा करें। पश्चात् छान रक्खें। मात्रा २–४ तोला तक।

गुण—अर्श, तिल्ली, गुल्म, उदररोग, मन्दाग्निमें लाभदायी है अग्निवर्धक है।

(२) पील्वासव (गदनिग्रह)

इसी पीलू आसवमें मूर्वा, खजूर, पाठा, एरंडकी जड़, मुलहठी

धमासा, मुनक्का, बेरकीछाल, चित्रक, सौंफ, त्रिकुटा, लौंग, दालचीनी, लोध, दन्ती । पाँच २ तोला है ।

मात्रा और गुण एकही हैं हैं ।

पुनर्नवासव (गदनिग्रह)

दोनो पुनर्नवां, पाठा, दन्ती, गिलोय, चित्रक प्रत्येक ऽ१ सेर, कंटकारी ऽ१॥ सेर जल १॥ मन क्वाथ अवशेष २० सेर ।

प्रक्षेप—चतुर्जात, मिर्च, सुगन्धवाला प्रत्येक १० तोला कल्क करके मिलावें । शहद ऽ१ खांड ऽ१० सेर जगल ऽ। मिलाकर सन्धान करें । मात्रा २ तोला–४ तोलातक ।

गुण—हृदरोग, पाण्डु, वहुत बढ़ा शोथ, प्लीहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, अर्श, उदररोग, खांसी, श्वाँस, संग्रहणी, कुष्ट, शाखागतवात, विष्टब्धता, हिक्का, किलासकुष्ट, हलीमकमें लाभदायी है ।

पुनर्णवासव (भैषज्यरत्नावली)

त्रिफला, त्रिकुटा, दारुहल्दी, गोखरु, कटेलीदोनौ वासा एरण्ड, कुटकी, बड़ीपीपल, पुनर्णवां, निम्बछाल, गिलोय, मूली-सूखी, धमासा, पटोलपत्र प्रत्येक आध सेर । जल २ऽ मन । अवशेष २५ सेर ।

प्रक्षेप—धावेके फूल ऽ१ सेर, मुनक्का ऽ१ सेर, उपरोक्त क्वाथमें डाल कर पकाले शहद ऽ२॥ खांड ऽ१० सेर, जगल ऽ। सन्धान करें ।

मात्रा २ तोला ।

गुण—प्रत्येक प्रकारकी शोथ, प्लीहा वृद्धि, यकृतवृद्धि, उदर-रोग, अम्लपित्त, गुल्म तथा प्रत्येक ज्वरोंमें हितकर है ।

पुष्करमूलासव (गदनिग्रह)

पुष्करमूल ऽ३ धमासा ऽ१॥ त्रिकुटा ऽ१। धनियाँ ऽ॥ मँजीठ, कुठ, मिर्च, पकाकैथा, देवदारु, विडंग, चव्य, लोध, पीपरामूल गम्भारीफल, खस, रास्ना, भारंगी, मोथा, प्रत्येक १० तोला जल १॥ मन अवशेष १६ सेर।

प्रक्षेप—धावेके फूल ऽ१ खांड ऽ८। मिर्च, नागकेशर, निसोत इलायची, दालचीनी, जावत्री प्रत्येक ६ तोला पीपल ऽ। सबका कल्क करके मिला दें। खाँड क्रमसे डालकर सन्धान करें।

मात्रा २ तोला।

गुण—क्षय, मृगी, खांसी, शोथ, गुल्म, भगन्दरमें लाभदायी है।

पूतिकाद्यारिष्ट (सुश्रुत)

घृतकरञ्ज, चव्य, चित्रक, देवदारु, सारिवा, दन्ती, त्रिकुटा प्रत्येक ऽ॥ पाव वेरीकी छाल, त्रिफला प्रत्येक सेर लोहदस्म ऽ॥ जल २ऽ मन, अवशेष ऽ२४ खांड ऽ२ सेर जगल ऽ। सन्धान करे।

मात्रा २ तोला।

गुण—कुष्ठ, प्रमेह, स्थूलता, पाण्डु तथा शोथमें लाभदायी है।

फलाद्यारिष्ट (गदनिग्रह)

हरड, आमला सेर सेर इन्द्रायण फल, कैथका पकाफल, पाठा, चित्रक प्रत्येक दस तोला। जल २४ सेर, क्वाथ शेष ६ सेर, खांड ऽ३ सेर जगल ऽ- सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—संग्रहणी, क्षय, हृदयरोग, पाण्डु, प्लीहा, कामला, विषमज्वर, मन्दाग्नि, खांसी, गुल्म उदावर्त में लाभदायक है। विष्टबधता को नष्ट करता है, अपान वायु सारक है, मलशोधक है।

बबूल्यासव (भैषज्यरत्नावली)

बबूलकी छाल ऽ१२ सेर सबको २।ऽ जलमें पकावें जब २२ सेर जल रहे उतार कर छान लें।

प्रक्षेप—खाँड ऽ१२ सेर धावे के फूल ऽ१ सेर पीपल १० तोला लौंग, जावत्री सीतलचीनी चतुर्जात, मिर्च, प्रत्येक ५ तोला कल्क करके मिला दें। जगल ऽ≈ डाल कर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—क्षय, कुष्ठ, प्रमेह, खाँसी, श्वाँसमें लाभ करता है।

बलारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

खरैटी पंचाँग, असगन्ध प्रत्येक ऽ६। सेर जल २ऽ मनमें क्काथ करें २० रहनेपर उतार छान लें।

प्रक्षेप—धावेके फूल ऽ१ सेर सतावर, एरण्डमूल प्रत्येक १० तोला। रास्ना, इलायची, प्रसारणी, लौंग, खस, गोखरू, प्रत्येक ५ तोला। खाँड ऽ१० सेर जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—भयंकर बातव्याधियोंमें अच्छा लाभ करता है। अग्निवर्द्धक, बल, वीर्य, क्रान्तिवर्द्धक है।

बब्लभारिष्ट (धन्वन्तरी)

उसाव ऽ।। अनन्तमूल ऽ१ कटेली ऽ।। कचनारकी छाल ऽ।। इन्द्रायणमूल ऽ।। सिरस छाल, मांजीठ, चिरायता, पित्त-पापड़ा गिलोय, देवदारु मुण्डी, सरफोंका, बबूलछाल, जवासा, बकायनकी छाल प्रत्येक ऽ। भर १।ऽ जलमें क्काथ करें। १५ सेर जल रहे उतार छान लें।

प्रक्षेप—कत्था, त्रिफला, कुटकी, उन्नाव, मुनक्का, निम्बफूल मेंहदी प्रत्येक २।। तोला चन्दन दोनों २० तोला बनफशा, सतावर,

धावेके फूल इन्द्रायणमूल, वच, वावची प्रत्येक २॥ तोला खाँड ऽ५ सेर शहद ऽ२॥ जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा २ तोला से ५ तोला तक।

गुण—उपदंशजनितरक्तविकार, फोड़ा, फुन्सी, कुष्ठ, वातारक्तमें लाभदायी है।

वासारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

वांसापंचांगका स्वरस या वांसापंचांगका वारीक चूर्ण ऽ। लेकर ऽ१ सेर मद्यमें घोल दें या ऽ। सेर स्वरस मिलाकर रख लें। चूर्ण डालें तो ३ दिन वाद छानकर मद्यभिन्न कर लें इसमें ऽ। खाँड़ डाले। मात्रा १ माशासे २ माशे तक।

गुण—खाँसी, दमा, रक्तपित्त, कण्ठरोग, उरक्षत, क्षयमें लाभदायी है।

वासकासव (गदनिग्रह)

बांसा पंचांग ऽ१० सेर जल, १ मन क्वाथ शेष १० सेर।

प्रक्षेप—कंकोल मिर्च, त्रिकुटा, चतुर्जात, सुगन्धवाला प्रत्येक ५ तोला धावेके फूल ऽ॥ खाँड़ ऽ५ सेर जगल ऽ— सन्धान करे। मात्रा २ तोला।

गुण—यह प्रत्येक प्रकारके शोथमें लाभदायी है। श्वांस, क्षय, कांसमें भी उपयोग है।

बीजकासव (गदनिग्रह)

विजयसार—ऽ१ त्रिफला ऽ१। मुनक्का ऽ॥ कच्ची लाख ऽ॥ सबका २४ सेर जलमें क्वाथ करें ६ सेर रहे उतार छान लें।

प्रक्षेप—त्रिकुटा, नख, रास, सुपारी, एलवालुक, मुलहटी,

कुष्ठ, प्रत्येक १॥ तोला कल्क करके डालें। खाँड ऽ३ सेर शहद ऽ१ सेर जगल ऽ– सन्धान करें। मात्रा २ तोले।

गुण—संग्रहणी, पाण्डु, ववासीर, शोथ, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, कामला और सन्निपात ज्वरोंमें लाभ करता है।

भृंगराज आसव (गदनिग्रह)

भृंगराजका रस ॥ऽ सेर, हरड़ चूर्ण ऽ॥

प्रक्षेप—पीपल, जायफल, लौंग, चतुर्जात, प्रत्येक १० तोला कल्क करके मिला दें। खाँड़ ऽ१० सेर जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—धातुक्षय, खाँसी, कृशता, शोषमें लाभदायी है। बल-वर्णका देनेवाला है। स्त्रियोंको गर्भाधानकारी है।

मण्डूरारिष्ट (गदनिग्रह)

मण्डूरभस्म ऽ३ सेर, लोहभस्म ऽ३ सेर, दोनोंको त्रिफलाके जलमें लोह कढ़ाईमें डालकर भिगो दें। और इसे धूपमें रखकर हिलाते रहे। जैसे २ लोह उसमें घुलता चला जाय उसे एक पात्रमें एकत्र करते चले जायँ। पहिले डाला हुआ त्रिफला गल जाय तो और त्रिफला तथा जल डाल दें। इस तरह करते २ जब सारा मण्डूर व लोह गल जाय उसमें निम्न-लिखित क्वाथ और मिला दें।

क्वाथद्रव्य—दन्तीमूल, चित्रक दस २ तोला, पीपल, वाय-विडंग २०–२० तोला, त्रिफला एक सेर, बेरकी छाल ऽ३ सेर, सबको ऽ१ मन जलमें पकाकर जब दस सेर शेष रहे छान लें। इन दोनोंको एकत्र करके इसमें ऽ८ सेर, क्रमसे खाँड़ तथा ऽ। सेर जगल डालकर सन्धान करें। मात्रा १–२ तोला।

गुण—यह आसव शरीरके ऊर्ध्वशत्रुरोग तथा कटिसे नीचेके रोगोंमें विशेष लाभदायी है। पाण्डु, उदरकृमि, बवासीर, कोढ़, खाँसी, श्लेष्मविकार तथा शोथमें उपकारी है।

मध्वारिष्ट (चरक)

विडंग ऽ। , पीपल ॥।, वंशलोचन, नागकेसर, मिर्च दस १० तोला। दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, कचूर, सुपारी, अतीस, मोथा, रेणुका, एलवालुक, तेजबल, पीपरामूल, चित्रक प्रत्येक ५ तोला। सबको ऽ४ जलमें प्रथम भिगोकर हिम निकाले। इसी प्रकार दूसरी बार उष्ण जल ऽ२ सेरमें भिगोकर हिम निकालें। फिर इसे ऽ१६ सेर जलमें पकावें, जब ऽ४ सेर जल रहे उतार छान लें। फिर जिस पात्रमें बनाना हो उसमें पीपल चूर्ण १० तोलाको शहदमें मिलाकर लेप करें यदि चूर्णको उसी तरह प्रक्षेपमें डाल दिया जाय तो वही बात होगी। इसमें शहद ऽ५ सेर किएव ऽ॥ डालें। डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—मन्दाग्निको दूर करता है, विषयाग्निको पूर्व स्थितिमें लाता है। इससे भिन्न हृदरोग, पाण्डु, संग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, ज्वर, शोथ, तथा अन्य वात कफज रोगोंमें लाभकारी है।

(१) मध्वासव (चरक)

महुआके फूल ऽ१६ सेर, विडंग ऽ८ सेर, चित्रक ऽ४ सेर, भिलावा ऽ४ सेर, मजीठ ऽ॥ सबको २।ऽ मन जलमें क्वाथ करें। शेष ॥।ऽ रहे उतार छान लें इसमें ऽ॥ किएव डालकर सन्धान करें, जब महुआका मीठा विलीन हो जाय तो थोड़ा २ करके ऽ८ सेर शहद डाल सन्धान पूरा करें।

प्रक्षेप—इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, चन्दन, खस, पाँच २ तो० कल्क करके डालें। मात्रा २ तोला।

गुण—शोथ, किलासकुष्ठ, प्रमेहमें उपकारी है। पाचनशक्ति बढ़ाता है, कामोद्दीपक है, श्लेष्म वृद्धिको रोकता है। उष्णता शामक है।

(२) मध्वासव (चरक)

खदिरसार, देवदारु, प्रत्येक सेर सबको ऽ१६ सेर जलमें पकाकर ऽ८ सेर रहने पर उतार छान लें।

प्रक्षेप—लोह भस्म ऽ– त्रिफला, चतुर्जात, मिर्च, धत्तूर पचांग, प्रत्येक २।। तोला खाँड़ ऽ२ सेर शहद ऽ२ सेर किण्व ऽ≈ सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—इसके सेवनसे कुष्ठ विशेष कर किलास कुष्ठको लाभ होता है।

(३) मध्वासव (चरक)

लोध, कचूर, पोहकरमूल, इलायची, मूर्वा, विडंग, त्रिफला, अजवायन, चव्य, प्रियंगू, सुपारी, इन्द्रायण, चिरायता, कुटकी भार्गी, तगर, चित्रक, पीपलामूल, कुठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेसर, इन्द्रसाह्वा, नख, तेजपत्र, मिर्च, मोंठा। प्रत्येक दस तोला जल ।।।ऽ२ सेर अवशेष १० सेर, शहद ऽ४ सेर, जगल ऽ≈ सन्धान करें। मात्रा २ तोलासे ८ तो० तक।

गुण—प्रत्येक प्रकारके प्रमेह, पाण्डु, अर्श, अरुचि, संग्रहणी कुष्ठ, किलासकुष्ठमें लाभ होता है।

मरिचकासव (गदनिग्रह)

मकोय ऽ४ सेरको ।।।ऽ२ सेर जलमें पकावें ऽ१० सेर, रहे उतार छान ले।

प्रक्षेप—विडंग, चतुर्जात, मिर्च प्रत्येक ५ तोला। पीपल १० तोला, खांड S५ सेर जगल S≈ सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—खांसी, श्वाँस, गलरोग, क्षय, उरः क्षतमें लाभकारी है।

मधुमेहासव (धन्वतरी)

सेमलके बीज, सोंठ, जामुनकी गिरी, कालीमूसली, जायफल, जावित्री, लौंग, नागकेशर, मोचरस, पीपलकी लाख, धनियाँ, मोथा, प्रत्येक १० तोला। जामुनकी छाल, सफेदाकी छाल ढाई २ सेर, आमकी छाल S१। खरेटी S२॥ अर्जुन S१ खैर छाल S। सेम्बलकी छाल S। कुटजत्वक्, बेलछाल, सुपारी, मोथा, कायफल, अनार-छाल। प्रत्येक १० तोला। त्रिफला आँवलाकी मींगी प्रत्येक २० तोला। बांसा, मरोड़फली, करञ्ज, लोध, बबूलकी फलियाँ, विडंग प्रत्येक १० तोला। जल २॥S मन अवशेष ३० सेर शहद S१४ सेर। जगल S। सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—यह आसव मधुमेह रोगमें लाभ करता है।

मुस्तकारिष्ट (भैषज्य रत्नावली)

मोथा S१२॥ २।S को जलमें पकावें शेष ३० सेर।

प्रक्षेप—धातकी पुष्प S१ अजवायन, त्रिकुटा, लौंग, मेथी, चित्रक, जीरा प्रत्येक १० तोला। खाँड़ १५ सेर जगल S। सन्धान करे। मात्रा २ तो० से ४ तोला तक।

गुण—अजीर्ण, मन्दाग्नि, हैजा, संग्रहणीमें लाभदायी है।

मृगमदासव (भैषज्यरत्नावली)

उत्तम मद्य S॥ सेर। मिर्च, लौंग, जायफल, छोटी पीपल, दालचीनी प्रत्येक तोला। सबका बारीक चूर्ण बनाकर मद्यको शीशीमें डाल दें। और शीशीको खूब हिलावें। धूपमें दो दिन धरा रहने दें, पश्चात् फिल्टर पेपरसे छान लें।

इसमें कस्तूरी २॥ तो० । डालकर फिर इसको धूपमें रक्खें तथा हिलाते रहें । कस्तूरी मद्यमें पीसकर डालनी चाहिये। तीन दिनके पश्चात् छान कर रख लें। मात्रा ५ से १० बूँद पानीमें डालकर दें। इसमें शहद वगैरह डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

गुण—श्वांसका दौरा जब हो रहा हो पन्द्रह २ बीस २ मिनट बाद २–३ खुराक देते ही दौरा बन्द हो जाता है । हृदय या फुफ्फुसकी गति रुकने लग रही हो इसकी डबल मात्रा देते ही हृदय व फुफ्फुस ठीक काम करने लगते हैं । न्यूमोनियाकी खराब हालतमें भी चमत्कारिक लाभ दिखाता है। हैजामें जब नाड़ी गिर रही हो इसको पानीमें मिलाकर दो चार बार दस २ पन्द्रह मिनटके बाद दे । हिचकी जब बन्द न होती हो एक दो मात्रा देते ही बन्द हो जाती है। बलवर्द्धक, उष्णताउत्पादक, स्नायु मण्डल उत्तेजक है।

मृत संजीवनी सुरा

वैद्योंको मृत संजीवनी सुरा न बनाकर हलीमें या उत्तम मद्यमें निम्नविधिसे संजीवनी तय्यार कर लेनी चाहिये। उत्तम मद्य ऽ१ एलवालुक, देवदारु, लौंग, पद्माख, खस, चन्दन, अजवायन, मिर्च, कालाजीरा, कपूर, जटामासी, चतुर्जात, जायफल, मोथा, सोंठ, मेथी, मेढ़ासिंगी, लालचन्दन प्रत्येक तोला सबको बारीक चूर्ण करके उक्त मद्यमें डाल दें और खूब हिलाते तथा धूपमें रखते रहें। तीन दिनके पश्चात् फिल्टरसे छान लें। यह सुरा सर्वोत्तम गुणयुक्त होगी। मात्रा ६ माशे से १ तोला तक। सेवन करने से क्षुधा बढ़ती है, बल, वीर्य, स्मृतिकी वृद्धि होती है। जुकाममें अत्यन्त हितकर है।

योगराज आसव (गदनिग्रह)

हरड़ ऽ।, लौंग, वेरकी छाल, अर्जुन छाल, देवदारु, चित्रक, लोध, पीपरामूल, धावेके फूल, सुपारी, प्रत्येक ५ तोला मजीठ १० तोला। दाख ऽ१ क्वाथ जल ऽ१६ सेर अवशेष ऽ४ जगल ऽ=।

प्रक्षेप—लौंग, चतुर्जात, त्रिकुटा जटामासी, बच, नागरमोथा, कुठ, जायफल, चोरक, स्थौणेयक, कुटकी प्रत्येक ५ तोला सबका कल्क करके मिला दें। खाँड ऽ२ सेर क्रमसे डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोलासे ५ तोला।

गुण—अग्निदीपक, रुचिवर्द्धक, उदररोग नाशक है।

रसायनारिष्ट (गदनिग्रह)

पीपरामूल, काकड़ासिंगी, बड़ीकटेरी, पाषाणवेद, पाढल, देवदारु, गोखरू, हरड़, प्रत्येक ऽ१ सेर बेर के पके हुए फल ऽ४ सेर दन्ती, चित्रक प्रत्येक ऽ१॥– सबको कूटकर २॥ऽ जलमें क्वाथ करें १ऽ मन रहे उतार कर छान लें।

प्रक्षेप—खाँड ऽ१५ शहद ऽ५ लोहभस्म ऽ१२॥, प्रियंगू पीपल, लोध, मुनक्का, एलवालुक, सुपारी, सोया, निम्बछाल, मूर्वा, देवदारु प्रत्येक ५ तो० कत्था ऽ। जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—पुष्टिकर, बलवर्द्धक, रसायन, वबलीपलित नाशक हैं।

रसोनसुरा (चक्रदत्त)

उत्तम मद्य या हली ऽ॥ लहसुन ऽ। पीपल, पोपरामूल, जीरा, कुटकी, चित्रक, सोंठ, मिर्च, चव्य, प्रत्येक ३ माशे सबको बारीक चूर्ण करके मद्यमें मिला दें। लहसुनको भी खूब बारीक

पीस कर मद्यमें डालकर धूपमें रख दें। पश्चात् फिल्टर पेपरसे छान लें। मात्रा १५—३० बूँद।

गुण—आमवात उदरकृमि, कुष्ठ, क्षय, अनाह, गुल्म, बवासीर, तिल्ली, प्रमेह, मन्दाग्नि तथा पाण्डुरोगमें लाभदायी है।

रोध्रासव (गदनिग्रह)

लोध, कचूर, पुहकारमूल, इलाची, मूर्वा, विडंग, त्रिफला, अजवायन, चव्य, प्रियंगू, सुपारी, इन्द्रायण, चिरायता, कुटकी, भारंगी, चित्रक, पीपरामूल, कुठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेसर, कुटजछाल, नख, तेजपत्र, मिर्च, दालचीनी, मोथा, प्रत्येक ५ तो० सबका २० सेर जलमें क्वाथ करें शेष ऽ५ सेर रहे उतार छान लें। शहद ऽ२॥ जगल ऽ≈ डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला से ४ तोला तक।

गुण—पाण्डु, अर्श, अरुचि, संग्रहणी, किलासकुष्ठमें लाभदायी है।

रोहितकारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

रुहेड़ा छाल ऽ६। सेर क्वाथजल १।ऽ मन १२ सेर शेष रहे छान लें।

प्रक्षेप—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, त्रिफला, प्रत्येक ५ तोले सबको कल्क करके क्वाथमें डाल दें। खाँड़ ऽ६ सेर धात्रेके फूल ऽ॥ जगल ऽ≈ सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—प्लीहावृद्धि यकृतवृद्धि, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, मलावरोध, शूल, पाण्डु, कामला, छर्दि, अतिसार, गुल्म, अष्ठीला कुष्ठ, शोथ, अर्श, संग्रहणी, कामला तथा जीर्ण ज्वरमें लाभदायो है।

(२) रोहितकारिष्ट (गदनिग्रह)

रोहितक छाल ऽ६। जल १।ऽ शेष जल १२ सेर। जगल ऽ=

प्रक्षेप—त्रिफला, लौंग, जायफल, धावेके फूल, लोहभस्म प्रत्येक ऽ।– छटाँक। चतुर्जात, पीपल, पीपरामूल चव्य, चित्रक सोंठ प्रत्येक ५ तोला सबका कल्क करके मिलाय सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—गुल्म, ज्वर, अरुचि, हृदरोग, भगन्दर प्लीहावृद्धि, यकृतवृद्धि, रक्तविकार, पाण्डु, अस्थिग्रह, श्वांसकासमें लाभदायी है।

लक्ष्मणारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

लक्ष्मणा कौन सी वनस्पतिका नाम है आज तक ठीक २ पता नहीं लग सका। सफेद फूलकी कटेलीको भी लक्ष्मणा नाम देते हैं किन्तु इसमें वह गुण नहीं पाये जाते। जो लक्ष्मणाके वर्णित हैं। लक्ष्मणाके स्थान पर हम यह तीनों ही वस्तुएँ डालते हैं।

मयूरशिखा, शिवलिंगीबीज, जियापोता, प्रत्येक १ सेर सबको कूट कर २४ सेर जलमें क्वाथ करें। शेष ६ सेर रहे उतार कर छान लें।

प्रक्षेप—मोथा, मुलहठी, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, जीरा, चन्दन दोनों, अजमोद, अजवायन, बेलगिरी, नागकेसर प्रत्येक २॥ तो० सबको कल्क करके क्वाथमें मिला दें। जगल ऽ= खाँड़ ऽ३ सेर क्रमसे डालकर सन्धान करें। मात्रा १ तोला।

गुण—स्त्रियोंके रजसम्बन्धी, व-डिम्बसम्बन्धी आन्तरिक विकारोंको दूर करता है। तथा स्त्रियोंको गर्भ ग्रहणकी शक्ति देता है। इसके सेवनसे गर्भाशय निरोग होकर गर्भ धारणके योग्य बन जाता है।

नोट—जिस व्यक्तिको लक्ष्मण प्राप्त हो वह लक्ष्मण छोड़कर उक्त योगको तय्यार करें। तथा इस मेरे बताये योगको भी तैयार करके परीक्षा लें। जिनसे लाभदायी हो उसकी सूचना दें।

लवङ्गासव (गदनिग्रह)

लौंग, पीपल, मिर्च, एलवालुक प्रत्येक सेर जल ।।।ऽ२ सेर अवशेष ऽ१० सेर, खाँड़ ऽ५ सेर, जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा १ तो०।

गुण—अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, हृदरोग, प्लीहा, श्वेतकुष्ठ, गुल्म, उदररोग, क्षय, कामला, अरुचि, कुष्ठ, शोथमें लाभदायी है। बलवर्णकारक है।

(२) लवङ्गासव (गदनिग्रह)

लौंग, दालचीनी, नागकेसर, कालीजीरी, कलौंजी, कौंचबीज, कालीमूसली, सिम्बलमूसली, गोखरू, खरैटी, खसखस, पोस्तफल, अकरकरा, प्रत्येक पावभर सबको ।।।ऽ२ सेर जलमें क्वाथ करें। अवशेष १० सेर।

प्रक्षेप—कचूर, पीपरामूल, मिर्च, असगन्ध, सोंठ, जायफल, जावित्री, अकरकरा, सीतलचीनी, इलायची, अगर, तालीसपत्र, चन्दन, भांग, क्षीरविदारी, विधारा, सुपारी, वंसलोचन, धतूरा

बीज प्रत्येक २॥ तो० । शहद ऽ१ सेर, खाँड़ ऽ३ सेर धावेके फूल ऽ। जगल ऽ— सन्धान करें । मात्रा १—२ तो० तक ।

गुण—यह आसव दुर्जय प्रमेह और धातु निर्बलताको दूर करता है ।

लोहारिष्ट (सुश्रुत)

शाल, असन, खैर, इरिमेद, तेन्दू, सुपारी, भोजपत्र, मेढासिंगी, तुन, लालचन्दन, पतंग, सीसम, सिरस, विजयसार, धव, अर्जुन, ताड़, सागौन, करञ्ज, लताकरञ्ज, सलई, अगरु, दारहल्दी इन सब वृक्षोंकी छालें ऽ६। सेर (यह सारसादिगण कहलाता है) सबको कूटकर १।ऽ जलमें पकावें, जब १५ सेर जल रहे, उतार छान लें ।

प्रक्षेप—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, इलायची, अजमोद, इन्द्रजौ, पाठा रेणुका, जीरा, भारङ्गी, बकायन बीज, हींग, कुटकी, सरसों, विडंग, अतीस, मूर्वा प्रत्येक ५ तो० लोहभस्म ऽ१। सेर, खाँड़ ऽ६ सेर, शहद ऽ२॥ सेर, किएव ऽ। सन्धान करें । मात्रा २ तो० ।

गुण—शोथ, हृद्रोग, गुल्म, कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डु, अभिष्यन्द जुमाक, विषमज्वर, कास, श्वांसमें लाभकारी है ।

लोहासव (शार्ङ्गधर)

लोहभस्म, त्रिकुटा, त्रिफला, अजवायन, विडंग, मोथा, चित्रक प्रत्येक आधसेर, जल १ मन क्वाथ शेष १० सेर, धावेके फूल ऽ१ सेर, खाँड़ ऽ४ सेर, शहद ऽ२ सेर, किएव ऽ= सन्धान करें । मात्रा २ तो० ।

गुण—पाण्डु, शोथ, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अर्श, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, खाँसी, श्वाँस, भगन्दर, अरुचि, संग्रहणी, हृद्रोगमें लाभदायी है।

(२) लोहासव (गदनिग्रह)

त्रिफला, निम्बछाल, पटोलपत्र, मोथा, पाठा, गिलोय, चन्दन, चित्रक, मिर्च, वायविडङ्ग, मजीठ, महुवा, कचूर, वांसा, निसोत, हल्दी, धमासा, पित्तपापड़ा, कटेली, इन्द्रजव, जवासा, चर्मरङ्ग, बावची, कौंचकी जड़, मेंथी, विल्व, कूड़ाकी छाल, कुटकी, त्रायमाण, पुष्करमूल, प्रत्येक ५ तो० । कत्था ऽ॥ सेर लोहभस्म ऽ≈ मण्डूर भस्म ऽ६। सेर । जल २५ मन । अवशेष ५३० सेर ।

प्रक्षेप—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, छीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहटी, छोटा नागरमोथा प्रत्येक ऽ। भर सबका चूर्ण करके काथमें मिलाय ऽ। किण्व डालकर सन्धान करें।

गुण—पाण्डु, खाँसी, कामला, श्वाँस, कास, विषमज्वर, प्लीहावृद्धि, यकृतवृद्धि, अतिसार, संग्रहणी, रक्तविकारमें लाभदायी है रक्तवर्द्धक बलर्द्धक है।

वरुणासव (गदनिग्रह)

वरुणछाल ५६। सेर सोसमकी छाल ५३≈ पुष्करमूल ५३≈ चित्रक ऽ१॥ सेर पियावाँसा, रुहेड़ाछाल, सँहजनाछाल, दशमूल प्रत्येक दो सेर । देवदारु, कटेली, प्रत्येक ५१। सेर, दाभमूल, ५।— वालछड़, बड़ी कटेली, प्रत्येक ५≡ खिरनी छाल ५।≡ सतावर, गम्भारीफल, अर्जुनछाल, काकड़ासिंगी, सोया, बड़ी

पीपल प्रत्येक ऽ॥ वला, कचूर, नागवला, करञ्ज, त्रायमाण, मोथा, मेढ़ासिंगी, कुठ, वाँसा, अगरु, आँबाहल्दी, विडङ्ग, पीपल, अतीस, जीरा, चव्य, रास्ना, कमल, सारवा, इन्द्रजौ, अजवायन, एरण्डमूल, निम्बछाल, खैरछाल, कुटकी, पतंग, गिलोय, मूर्वा, अमलतास, हाऊबेर, भारङ्गी, प्रत्येक ऽ= सवको कूटकर ८ऽ मन जलमें पकावें। अवशेष २ऽ मन रहे। उतार छान लें।

नोट—गदनिग्रहकारने ४ द्रोणजल अर्थात् ३ऽ मन अधिक से अधिक जलमें पकाना लिखा है। औषधियाँ समस्त १ऽ मनके करीब बनती है यदि इन्हें कूटकर १ऽ जलमें भिगो दिया जाय तो लगभग १॥ऽ मन पानी तो यह पीकर ही फूलेंगी पश्चात् काथ करनेमें यदि चौथाई ही रक्खे तो १५ सेर जल बचता है। वह १ऽ मन चूर्णका अवशेष सिवाय अवलेहके कुछ नहीं रहेगा यदि आधा ही जल शोषण करें तब भी इतना गाढ़ा होगा कि वह मुश्किलसे सन्धान होगा, यह योग ग्रन्थकारकी परिपाटीसे बनानेपर आसव नहीं बन सकता। क्योंकि ऽ८ सेर मीठा डालनेपर ऽ१५ सेर काथका कैसा अवलेह बनेगा। पाठक ही विचार कर लें।

प्रक्षेप—खाँड़ ऽ३० सेर शहद ऽ१० सेर धावेके फूल एक सेर, किण्व एक सेर, चन्दन दोनों, केसर, निर्मली, कपूर, लौंग, अकरकरा, वंसलोचन, भारङ्गी, तगर; सीतलचीनी; जायफल, तेजपत्र; जावित्री; चतुर्जात; सुगन्धवाला और लोहभस्म प्रत्येक पाँच तोला सबको कल्क बनाकर डाल दें और सन्धान करें। मात्रा २ तो०।

गुण—यकृतवृद्धि; प्लीहावृद्धि; विद्रधि; गुल्म; खाँसी; श्वाँस;

रक्तविकार; हिक्का; दर्दवदन; आमवात; अर्बुद; पांडु, कुष्ठ; वमन; अरुचि; शोथ; अध्मान; अश्मरी; भगन्दर; क्षय; अपनातक, अर्दिति; अर्धाङ्गवात; हलीमक; बन्धत्व आदि रोगोंमें लाभकारी है त्रिदोषनाशक है। रक्त; बल; वीर्यवर्द्धक है।

वासकासव (गदनिग्रह)

वांसा ऽ१२॥ सेर जल १॥ऽ मन अवशेष १६ सेर।

प्रक्षेप—खाँड़ ऽ८ सेर, धावेके फूल ऽ॥ चतुर्जात; त्रिकुटा; कंकोल मिर्च; सुगन्धबाला प्रत्येक पाँच तो०। किएव पावभर सन्धान करें। मात्रा २ तो०।

गुण—यह आसव समस्त प्रकारके शोथमें लाभदायी है।

विडङ्गासव (शार्ङ्गधर)

वायविडंग, पीपरामूल, रास्ना, पाठा, आंवला, एलवालुक कुटजत्वक्, इन्द्रजौ, भारंगी, प्रत्येक ऽ।– जल ॥ऽ अवशेष ऽ८ शहद ऽ४ किएव ऽ= सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, उरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, कण्ठ-माला, विद्रधि, हनुस्तम्भ और आढ्यवातमें लाभदायी है।

विषमुष्ट्यासव

कुचला ऽ। चिरायता, गिलोय, मोथा, कुटकी, हरड़, चित्रक, प्रत्येक १० तो० मुनक्का ऽ॥ उन्नाव ऽ॥ सबको चूर्ण करके १६ सेर जलमें काथ करें अवशेष ऽ४ सेर।

प्रक्षेप—इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, त्रिकुटा, अजवायन, सौंफ, लौंग, जायफल, जावत्री प्रत्येक तोला सबको कल्क करके काथमें मिला दें। शहद ऽ२ जगल ऽ– डालकर

सन्धान करें शहद आधा २ सेर क्रमसे डालें। मात्रा १०-१५ बूँद जलमें।

गुण—अग्नि मांद्य, उदरविकार, दर्द वदन, जुकामपुराना और कब्जमें लाभदायक है स्नायुमण्डलको उत्तेजित करता है। हृदयको वल देता है। रक्तवर्द्धक, बलवर्द्धक है। स्वप्न-दोष नाशक है।

वृश्चीराद्यासव (गदनिग्रह)

पुनर्णवा स्वेत, एरंडमूल लालपुनर्णवां, कटेलीदोनों, चित्रक, प्रत्येक १ सेर सवको कूटकर १।ऽ जलमें काथ करें। अवशेष ऽ१२ सेर। शहद ऽ५ हरड़ चूर्ण ऽ।। जगल ऽ। सन्धान करें मात्रा २ तोला।

गुण—भयंकर गुल्म व अरुचिको दूर करता है।

बृहन्मूलासव (गदनिग्रह)

महापीलू, वट, और आक प्रत्येक ऽ५ सेर, दशमूल ऽ१५ सेर जल ४ऽ मन अवशेष १ऽ मन।

प्रक्षेप—हरड़ ऽ।। धावाके फूल ऽ१। सुपारी ऽ१। पीपल ऽ.— चतुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर) लौंग, कंकोलमिर्च, जावत्री, मिर्चकाली प्रत्येक ५ तोला (खाँड़ ऽ२० सेर जगल ऽ।। सन्धान करें। मात्रा २ तो०।

गुण—क्षय, श्वांस, कास, आमवात, गुल्म, पाण्डु, तिल्ली तथा अन्य उदरकी बीमारियोंमें लाभदायी है। क्षुधावर्द्धक है, कब्जहर है।

शर्करासव (गदनिग्रह)

धमासा ऽ१ सेर, चित्रक, वांसा, हरड़, आमलासोंठ, पाठा, प्रत्येक १० तोला। सबका २० सेर जलमें क्राथ करें। शेष ऽ५ सेर।

प्रक्षेप—पीपल, चव्य, प्रियंगू, प्रत्येक ५ तोला खाँड़ ऽ२॥ सेर जगल ऽ= डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तोला।

गुण—अर्श, संग्रहणी, उदावर्त, अरुचि, मलावरोध, मूत्राव-रोध, अपानवायुअवरोध, उद्गारअवरोध, अग्निमांद्य, हृद्रोग, पाण्डुमें लाभदायी है।

शिरीषारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

सिरसकी छाल ऽ३ सेर, जल ।॥ऽ सेरमें क्राथ करें अवशेष जल ऽ८ सेर।

प्रक्षेप—खाँड़ ऽ४ सेर, पीपल, प्रियंगू, कुठ, इलायची, नीलके पत्ते, नागकेसर, हल्दी, दारुहल्दी, सोंठ प्रत्येक ५ तोला। सबको कल्क करके घोल दें जगल ऽ= डालकर सन्धान करें। मात्रा २ तो०।

गुण—विषविकार, रक्तविकारमें लाभदायो है।

श्रीखण्डासव (भैषज्यरत्नावली)

चन्दन श्वेत, मिर्च, वालछड़, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, मोथा, खस, तगर, मुनक्का, लालचन्दन, नागकेसर, पाठा, आँवला, मिर्च, चव्य, लौंग, इलायची, एलवालुक, लोध, प्रत्येक ५ तोला। सबको चूर्णकर ऽ५ सेर उष्ण जलमें भिगो दें। सुबह मथकर

निचोड़ ले, फिर ऽ२ उष्णजलमें भिगो दें। अगले दिन वह पानी मलकर निकाल लें। पश्चात् इसे ऽ८ सेर जलमें क्वाथ करें। जब दो सेर रहे उतार छान लें।

समस्त हिम व क्वाथ जल एकत्र कर दें। मुनक्का ऽ४ सेर को ऽ८ सेर जलमें भिन्न पकावें, जब मुनक्का गल जाय, जल २ सेर रह जाय मलकर इसको भी उक्त जलमें मिला दें।

प्रक्षेप—खाँड़ ऽ४ सेर, धावेके फूल ऽ॥ सेर, जगल ऽ। प्रथम सन्धान बिना खाँड़ डाले करें। पश्चात् जैसे २ मीठा विलीन होता जाय और डालते जायँ। मात्रा २–४ तो०।

गुण—अत्यन्त मद्यपानसे जो विकार हो जाते हैं उसकी शान्तिके लिये इसे पीना चाहिये।

सारस्वतारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

ब्राह्मी ऽ१। सतावर, विदारीकन्द, हरड़, खस, अद्रक, सौंफ प्रत्येक ऽ। सबका ३० सेर जलमें क्वाथ करें। अवशेष ऽ८ सेर।

प्रक्षेप–खाँड़ ऽ३ सेर शहद ऽ१ धावेके फूल ऽ। रेणुका, निसोत, पीपल, लौंग, वच, कुष्ट, असगन्ध, वहेड़ा, गिलोय, इलायची, वायविडंग, दालचीनी, प्रत्येक तोला जगल ऽ। सबको पीस कर क्वाथमें घोल दें। खाँड़, शहद क्रमसे डाल कर सन्धान करें। पश्चात् छानकर इसमें १। तोला स्वर्ण हरिद (Gold chloride) मिला कर रख लें। मात्रा २ तोला।

गुण—इसके सेवनसे आयु, बुद्धि, धृति, वीर्य, ओज व कान्तिकी वृद्धि होती है। यह स्त्रियोंके ऋतु सम्बन्धी विकार तथा पुरुषोंके वीर्य सम्बन्धी विकारोंको दूर करता है।

सारिवाद्यारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

अनन्तमूलबंगाल, मोथा, लोध, वट और पीपलकी छाल, कचूर, अनन्तमूलदेसी, पद्माख, सुगन्धवाला, पाठा, आंवला, गिलोय, खस, चन्दन दोनों, अजवायन, कुटकी प्रत्येक ५ तोला इलयाचीदोनों, कुठ, सनाय, हरड़ प्रत्येक ऽ। भर मुनक्का ऽ४ सेर। जल ।।।ऽ२ अवशेष ऽ८ सेर। प्रक्षेप—खाँड़ ४ सेर धावेके फूल ऽ।। जगल ऽ। सन्धान करें। मात्रा–२ तोला।

गुण—२० प्रकारके प्रमेह, मधुमेहपिटिका, भयंकरउपदंश और वातरक्तमें लाभ करता है।

एलारिष्ट (भैषज्यरत्नावली)

छोटी इलाची ऽ। जावत्री, बड़ी इलायची, लौंग, दालचीनी, नागकेसर, क्षीरकाकोली प्रत्येक तोला सबको अच्छी तरह पीस कर ऽ१ सेर उत्तम मद्य या हली में भिगोकर तीन दिन धूपमें रखकर छान लें। मात्रा १ माशेसे २ माशे तक।

गुण—भयंकर उदरशूलमें लाभदायी है।

हरीतिक्यासव (गदनिग्रह)

हरड़की वकली ऽ।। सेर आमला ऽ२ सेर दशमूल ऽ३ सेर पोहकरमूल ऽ१।। सेर चित्रक ऽ१।। सेर धमासा ऽ।।। गिलोय ऽ१। इन्द्रायणमूल ऽ।– कत्था ऽ।। सेर विजौरा छाल ऽ। मँजीठ, मुलहटी, कुठ, कैथाछाल, देवदारु, वायविडङ्ग, चव्य, लोध, भारङ्गी, एलवालुक, मोथा, पीपल, सुपारी, कचूर; पद्माख, प्रियंगू, सारिवा, जटामांसी, नागकेसर, रेणुका, निसोत, हल्दी, रास्ना, मेढ़ासिंगी, पुनर्णवां, सौंफ, कुटकी, दन्तीमूल, प्रत्येक पाँच तोला। मुनक्का ऽ३।। सेर जल २।।ऽ मन अवशेष ऽ३२ सेर

प्रक्षेप—खाँड़ ऽ१५ सेर धावेके फल ऽ१।। शहद ऽ२ पीपल १० तो० जायफल, लौंग, चतुर्जात, कस्तूरी प्रत्येक तोला। जगल ऽ। कस्तूरीको छोड़कर अन्य प्रक्षेप द्रव्योंको कल्क बनाकर क्वाथ जलमें मिला दें। और सन्धान करें। छान लेनेके बाद कस्तूरी पीसकर मिलावें।

गुण—प्रत्येक धातुक्षय, प्रत्येक प्रकारका कास, प्रत्येक तरहकी बवासीर, समस्त उदररोग, प्रमेह अरुचि, पाण्डु, हलीमक, हृदरोग, वायुरोग, अग्निमान्द्य, आमविकार, दमा, क्षय, प्रत्येक कुष्ठ, दर्द, भगन्दर, मधुमेह, वहुमूत्र, मूत्रकृच्छ, पथरी, कृशता तथा संसारकी समस्त बीमारियोंमें लाभ करता है।

इति शुभम्।



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१८	सीधु इक्षु	सीधुः इक्षु
४	२	सन्धानात्ये	सन्धानान्मै
५	४	सामान्यात्मद	सामान्यान्मद
६	१४	गृह्णीयात्	गृह्णीयात्
६	१७	नाड़ियन्त्र	नाड़ीयन्त्र
७	२३	पुण्णास्यु	पुराणाःस्यु
१०	५	नामवत	नामवत्
१०	१२	दसमूल	दशमूल
११	६	समव	समय
१३	५	द्रव्व	द्रव्य
१४	२१	वलती	जलती
१४	२२	वल	जल
१५	३	वालने	जलाने
१५	८	वालने	जलाने
१५	१३	वलने	जलने
१८	१०	ढँक	ढाँक
१८	१२	वर्त्ती	पायी
२१	१४	वरीक	बारीक
२३	२५	परिश्राव्य	परिस्राव्य
२४	११	विंशति	विंशतिम्
२४	१७	संस्थापयेद	संस्थापयेद्
३२	९	रूढ़ी	रूढ़ि
३५	३	काष्ट	काष्ठ
४२	३	दिनादि	दिनानि
४२	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	१७	जैसे	जैसी
४५	२०	किण्वीकटाणु	किण्वकीटाणु
४६	९	तंगी आँखों	नंगी आँखों
५२	१९	जैसी स्वच्छ मीठा	जैसे स्वच्छ मीठे
५४	१५	रसायनिक	रासायनिक
६०	१४	घोलमें	घोलमें
६४	१९	इच्छित	यथेष्ट
६४	२४	आन्तरीय	अन्तरीय
६६	११	धयनि	धमनी
६७	१७	द्विउग्मि	द्विउग्मिद
७०	१८	जौ	जो
७१	१२	एसिड अम्ल	अम्लको आंगलभाषामें एसिड
७५	२०	येण केण	येन केन
७७	१०	आसवकालायी	आसवयी
७८	१४	नकिबाधक	नबाधक
८१	१८	नघुले	नघुलें
८१	१८	प्रत्युत्	प्रत्युत
८१	२५	मात्राधिक्यता	मात्राधिक्य
८४	३	क्वाथद्रव	क्वाथ द्रव्य
८४	६	लगभग वह	लगभग लाभ
८६	९	दध्याम्ल	दध्यम्ल
९५	१६	रात्री	रात्रि
९९	२१	जल ।ऽ	जल ८ऽ
९९	२१	शेष क्वाथ १५ सेर	शेष क्वाथ २ऽ
९९	२२	खांड ऽ८	खांड ।ऽ शहद ।ऽ
११२	१०	धन्वन्तरी	धन्वन्तरि
११४	२	अनन्तमूलदोन	अनन्तमूलदोनों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११४	२१	उदरग्रन्थी	उदरग्रन्थि
११८	२	धयांसा	धमांसा
११८	१९	दन्त्यारिष्ट	दन्त्यरिष्ट
११८	२३	विष्टभ्यता	विष्टब्धता
११९	२२	अध्यान	आध्मान
,,	२३	श्वांस	श्वास
१२०	२	बन्धत्व	वन्ध्यादोष
,,	१६	अध्यान	आध्मान
१२१	८	श्लेष्क	श्लेष्म
,,	२०	मूत्रकृच्छ	मूत्रकृच्छ्र
,,	२१	दाक्षासव	द्राक्षासव
१२३	१	धान्यारिष्ट	धान्यरिष्ट
१२४	८	पार्थाद्यारिष्ट	पार्थाद्यरिष्ट
,,	२२	पर्पटाद्यारिष्ट	पर्पटाद्यरिष्ट
१२५	६	अष्टीला	अष्ठीला
,,	७	पिप्पलीमूलाद्या	पिप्पलीमूलाद्यरिष्ट
,,	२०	पिप्पलासव	पिप्पल्यासव
,,	२३	सौंफ फाहरीयेवल	......
,,	२४	इलायची त्येक	इलायची प्रत्येक
१२८	११	पूतिकाद्यारिष्ट	पूतिकाद्यरिष्ट
,,	१३	लोहदस्य	लोहभस्म
,,	१७	फलाद्यारिष्ट	फलाद्यरिष्ट
,,	२२	विष्टवधता	विष्टब्धता
१२९	१	बबूल्यासव	बबूलासव
,,	११	२०	२० सेर
,,	१६	क्रान्ति	कान्ति
,,	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	१७	जैसे	जैसी
४५	२०	किण्वीकटाणु	किण्वकीटाणु
४६	९	तंगी आँखों	नंगी आँखों
५३	१९	जैसी स्वच्छ मीठा	जैसे स्वच्छ मीठे
५४	१५	रसायनिक	रासायनिक
६०	१४	घोलमें	घोलमें
६४	१९	इच्छित	यथेष्ट
६४	२४	आन्तरीय	अन्तरीय
६६	११	धयनि	धमनी
६७	१७	द्विउष्मि	द्विउष्मिद्
७०	१८	जौ	जो
७१	१२	एसिड अम्ल	अम्लको आंगलभाषामें एसिड
७५	२०	येण केग	येन केन
७७	१०	आसवकालायी	आसवयी
७८	१४	नकिबाधक	नबाधक
८१	१८	नघुले	नघुलें
८१	१८	प्रत्युत्	प्रत्युत
८१	२५	मात्राधिक्यता	मात्राधिक्य
८४	३	क्वाथद्रव	क्वाथ द्रव्य
८४	६	लगभग वह	लगभग लाभ
८६	९	दध्याम्ल	दध्यम्ल
९५	१६	रात्री	रात्रि
९९	२१	जल ११ऽ	जल ८ऽ
९९	२१	शेष क्वाथ १५ सेर	शेष क्वाथ २ऽ
९९	२२	खांड ऽ८	खांड ।ऽ शहद ।ऽ
११२	१०	धन्वन्तरी	धन्वन्तरि
११४	२	अनन्तमूलदोन	अनन्तमूलदोनों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११४	२१	उदरग्रन्थी	उदरग्रन्थि
११८	२	धयांसा	धमांसा
११८	१९	दन्त्यारिष्ट	दन्त्यरिष्ट
११८	२३	विष्टम्भ्यता	विष्टब्धता
११९	२२	अध्यान	आध्मान
,,	२३	श्वांस	श्वास
१२०	२	बन्धत्व	वन्ध्यादोष
,,	१६	अध्यान	आध्मान
१२१	८	श्लेष्क	श्लेष्म
,,	२०	मूत्रकृच्छ	मूत्रकृच्छ्र
,,	२१	दाक्षासव	द्राक्षासव
१२३	१	धान्यारिष्ट	धान्यरिष्ट
१२४	८	पार्थाद्यारिष्ट	पार्थाद्यरिष्ट
,,	२२	पर्पटाद्यारिष्ट	पर्पटाद्यरिष्ट
१२५	६	अष्टीला	अष्ठीला
,,	७	पिप्पलीमूलाद्या	पिप्पलीमूलाद्यरिष्ट
,,	२०	पिप्पलासव	पिप्पल्यासव
,,	२३	सौंफ फाहरीयेवल	……
,,	२४	इलायची त्येक	इलायची प्रत्येक
१२८	११	पूतिकाद्यारिष्ट	पूतिकाद्यरिष्ट
,,	१३	लोहदस्य	लोहभस्म
,,	१७	फलाद्यारिष्ट	फलाद्यरिष्ट
,,	२२	विष्टवधता	विष्टब्धता
१२९	१	बबूल्यासव	बबूलासव
,,	११	२०	२० सेर
,,	१६	क्रान्ति	कान्ति
,,	[illegible]	अन्वन्तरी	धन्वन्तरि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२९	१८	उसाव	उसवा
,,	१९	मांजीठ	मँजीठ
१३०	४	वातारक्त	वातरक्त
,,	१९	उपयोग है	उपयोगी है
१३२	१	ऊर्ध्व शत्रु	ऊर्ध्वजन्तु
,,	४	मध्व्रारिष्ट	मध्वरिष्ट
१३२	१६	विपयाग्नि	विषमाग्नि
१३३	१८	मोंठा	सोंठ
१३४	४	धन्वन्तरी	धन्वन्तरि
१३४	१६	मोथा ऽ१२॥ को	१२॥ सेर मोथाको
१३६	११	पापाणवेद	पाषाणभेद
१३७	२	अनाह	आनाह
,,	६	पुहकारमूल	पुहकरमूल
१३९	५	लक्ष्यणा	लक्ष्मणा
१४१	११	ऋपयक	ऋषभक
१४३	२	अध्मान अपकातक	आधमान अपतानक
,,	३	अर्दितिवन्धस्य,	अर्दित, वन्ध्या